तृतीय अध्याय

जैनेंद्रकुमार के नारी प्रधान उपन्यासों में नारी के विभिन्न रूप

पत्नी, प्रेमिका, माँ, विधवा, शिक्षित, बहन

तृतीय अध्याय

जैनेंद्रकुमार के उपन्यास में नारी के विभिन्न रूप --

जीवन का ही दूसरा नाम साहित्य है, और साहित्य का दूसरा नाम जीवन। जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक सम्बन्धों पर निर्भर है। नारी पुरुषत्व का आधार है। बिना उसके मानव अपने जीवन में एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव करता है। सम्भवत: इसीलिये हमारे देवताओं के साथ भी स्त्रियों का नाम जुड़ा रहता है। यथा सीता-राम, राधेश्याम, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण आदि इसको अनुभव करते हुए डॉ. विमल सहस्त्रबुध्देने एक जगह लिखा है "व्यक्ति का संघर्ष बाहरी जगत् की अपेक्षा आन्तरिक जगत् में शुरू हुआ। इस संघर्ष की उद्दीप्ति हुई, एक ओर उस काल की राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक तथा सौंदर्यबोध की नई परिस्थितियों के कारण से प्रारम्भ होता है। तथा दूसरी ओर मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोविश्लेषण की नई-नई पध्दतियों और परिस्थितियों से भी उद्दीप्ति हुई। जैनेंद्रकुमारजी ने इस संघर्ष को व्यक्ति के धरातल पर बहुत ही प्रखर रूपमें उपस्थित किया और इसके लिए उन्होंने प्रतिनिधि पात्र स्त्री को बनाया।" [१]

जैनेंद्रकुमार मनोवैज्ञानिक कार थे। इसलिए उनके सभी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता किसी न किसी रूप में दिखाई ही देती है। उनके सभी उपन्यासोंके नारी पात्र लाज युक्त कोमल संवेदनशील तथा प्रकृति से नारीत्व के भावानुरूप दिखाई देते हैं।

---

१ 'डॉ. विमल सहस्त्रबुध्दे' - 'हिंदी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' - पृ. २२१
प्रकाशक - पुस्तक संस्थान, १०९।५० ए,
नेहरू नगर, कानपूर-२०८०१२,
प्रकाशन - १९७४

8669
A

गाँधीवादी दार्शनिक विचारधारा और फ्रायडवादी मनोविश्लेषणात्मक पध्दति के सम्मिलित प्रभाव ने जैनेंद्रकुमार की अन्य साहित्यिक कृतियों की भाँति, उनके उपन्यासों के नारीपात्रों को भी पर्याप्त रहस्यमय रूपमें प्रस्तुत किया है। अत: उनके उपन्यासों में नारी-चित्रण सामान्य पारिवारिक या सामाजिक धरातल पर नहीं हुआ। जैनेंद्रकुमार के स्त्री-पात्र भी व्यक्तिपरक हैं। किसी न-किसी सामाजिक या मानसिक रिक्तता से जुड़ी रहे हैं। जैनेंद्रकुमारजी की दृष्टि ने अपने उपन्यासों की नारियों को समस्या और आदर्श के बीच झूलता हुआ प्रस्तुत किया। जिसमें उन्होंने सहानुभूति और करुणा का पुट देकर अपनी मनस-पुत्रियों के लिए बलात पाठक के मन की आस्था प्राप्त कर ली हैं। जैनेंद्रकुमारजी ने नारी-जीवन के कुछ पहलों को आधुनिकता के चश्मे से देखने का प्रयास किया।"[१]

नारी का किसी श्रेष्ठ साहित्य सृजनमें बहुत बडा हाथ होता हैं। साहित्य और नारी का सम्बन्ध शाश्वत हैं। साहित्य समाज से अलग रहकर जी नहीं सकता और समाज का केन्द्र बिंदू नारी ही हैं। तब जो भला साहित्य से कैसे अलग हो सकती थी।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंदजीने अपने कथात्मक साहित्य के माध्यम से नारी को ही महान बताया हैं उन्होंने इसीबात को "गोदान" उपन्यास में बहुत सुंदर ढंग से स्पष्ट किया हैं।" मैं प्राणियों के विकास में (नारी को) पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझाता हूँ जैसे -- प्रेम, त्याग और श्रध्दा, हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ हैं। .... स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ हैं जितना प्रकाश अंधेरे से।"[२]

१ 'मनमोहन सहगल' - उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार मूल्यांकन और मूल्यांकन' - पृ. ५१
प्रकाशन - साहित्य भारती, संस्करण - १९७६

२ 'प्रेमचंद' - गोदान - पृ. १६०-१६१
प्रकाशक - भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली-२
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९८७

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार प्रेमचंदजी से भी दो कदम आगे बढ़कर दुनिया का आधार ही नारी को मानते हैं। 'परख' उपन्यास में नारी के संदर्भ में स्पष्ट विवेचन किया है और वे कहते हैं "स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है। घर को कुटुम्ब को बनाती हैं, जाति और देश को भी, मैं कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है फिर उन्हें बिगाडती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी, ठहराव भी और उजाड भी, दूध भी खून भी, रोटी भी और स्कामें भी और फिर अपनी मरम्मत और श्रेष्ठता भी, सब कुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड भी वही है ..... दुनिया स्त्री पर टिका है।"[१]

जैनेंद्रकुमारजी ने अपने उपन्यासों में नारी की पवित्रता को आँकने के लिए मानदंड बदल दिये हैं। जैनेंद्रजी उपन्यासों से पहले उपन्यासकारों ने विवाहित नारी प्रेम की ओर विशेष रूप से देखा। वे ये मानते थे कि नारी एक बार जिसको पति के रूप में ग्रहण कर लेती है उसके प्रति सदा तन-मन से समर्पित हो जाती है। यदि किसी कारण वश ऐसा करने में असफल या अयोग्य होती है तो वे पतीता माना जाती है। परंतु जैनेंद्रकुमारजी अपने उपन्यासों में चेतन से भी अधिक अवचेतन और अर्धचेतन प्रवृत्तियों पर बल देते हैं। इसलिए वे नारी को पतित या उच्छृंखल मानने में पुराने माप-दंडों का प्रयोग नहीं करते। वे मन की सच्चाई और प्रेम की एकांतता को ही विशेष महत्व देते हैं। यदि नारी का मन निश्चल है वे हैं संपूर्ण मन से प्रेम करती हैं तो उसकी आत्मा पवित्र है, आदर स्वरूप है।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - पृ.५८
हिंदी - ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई - ४
संस्करण १९४१

जैनेंद्रकुमारजी ने अपने उपन्यास में विवाहित नारी के जीवन में अपर व्यक्ति का आकर्षण किया है। जैनेंद्रकुमार ने इस संदर्भ में कहा है -- ' ये नारियाँ विवाह - बंधन में बंधने के बाद भी प्रेम के स्वाभाविक, आकर्षण को अस्वीकार नहीं कर पाती। जैनेंद्रकुमार का तो कहना है विवाह सम्बन्ध व्यक्ति को बन्द कर देता है यह सही समझाना चाहिए। स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी बनकर गृहस्थी को अपने लिए जेलखाना बना ले इसका समर्थन नहीं है। स्त्री के जीवन में पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों का सद्भाव ही नहीं है, माना जाय तो मैं इससे सहमत नहीं हूँ। ..... विवाह को नारी पर प्राचीर बना कर घिराने का हक नहीं है।'[१]

निवर्तमान काल में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार यौनजन्य-स्थिति में नारी मन के गोपन को चित्रित करने के लिये नारी को नायिका रूप में प्रस्तुत ही नहीं करता अपितु नायिका-प्रधान उपन्यासों की रचना भी करता है। फ्रायड महोदय ने भी उपन्यासों में पुरुष-पात्रों की अपेक्षा नारी-पात्रों के चित्रण के औचित्य को स्वीकार किया है। इसको अनुभव करते हुए डॉ. सावित्री मलपाल कहती हैं ' पुरुषों को अपना ममत्व, अपना आत्मविश्वास तथा अपनी सम्वेदना प्रदान कर वे (नारियाँ) सभ्यता के विकास का प्रयत्न करती हैं क्योंकि पुरुष केवल अपने जीवन की व्यक्तिगत बातों के सम्बन्ध में ही सोचता है और जीवन में वास्तविक मूल्यों की अवहेलना करता है।'[२]

जैनेंद्रकुमार ने अपने उपन्यासों में नारी-जीवन के कई पहलों को

---

१ ' बिंदु अग्रवाल ' - हिंदी उपन्यासों में नारी-चित्रण ' - पृ. ५१
प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन,
संस्करण - १९६८

२ ' डॉ. सावित्री मलपाल ' - जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी पात्र ' - पृ. १६
मंगल प्रकाशन, जयपुर,
संस्करण - १९८६

आधुनिकता के चरमें मे देखने का प्रयास किया है किंतु स्वयं परम्परित संस्कारों से मुक्त न हो सकने के कारण वह नारी के पुरातन आदर्शों का तिरस्कार नहीं कर सके। किसी पत्नी के मन में पुराने प्रेमी के लिए सजग प्रेयसी - भाव के प्रति उन्हें सहानुभूति है, किंतु जैनेंद्रकुमार पत्नी का वास्तविक आदर्श आज भी उसके पातिव्रत और स्त्रीत्व सतीत्व में देखने के अभिलाषी थे। पति नारी के लिए देवता है या नहीं, जैनेंद्रजी का उपागम उसे एक ऐसा सूत्र अवश्य बना देता है, जिसे छिन्न नहीं किया जा सकता। जैनेंद्रजी की मान्यता है - " मैं उस स्त्री की पूजा करूँगा जो कैसे भी स्वामी को पति-रूप में पाती और उसे देवता मानकर कभी भी पतिव्रत भाव से विमुख नहीं होती है लेकिन कोई स्त्री ऐसा न कर सके तो सहसा दोष और दण्ड देने के लिए भी मैं आगे नहीं बढूगा।"[१] इसलिए जैनेंद्रजी की स्त्री पात्राएँ एक बिलकुल नए वेश में विशेषोपलब्धि बन गई हैं।

जैनेंद्रजी के नारी-पात्रों को भी पर्याप्त रहस्यमय रूप में प्रस्तुत किया है। जैनेंद्रजी के उपन्यासों में नारी-चित्रण सामान्य परिप्रेक्ष्य पारिवारिक या सामाजिक धरातलपर नहीं हुआ। उनके उपन्यासों का परिप्रेक्ष्य असामान्य और बाह्य जगत् की अपेक्षा अधिकांशत: अन्तर्जगत से सम्बधित है। इसलिए जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में चित्रित नारियाँ भी या तो अति बौध्दिकता में ग्रस्त है। जैनेंद्रजी नारी के उस रूप को मान्यता नहीं देते जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा को मान्य है।

जैनेंद्रजी ने नारी पात्रों के आन्तरिक उद्घाटन के स्तर पर त्रिकोणात्मक प्रेम समस्या के साथ उसके वैयक्तिक स्तर का प्रतिपादन किया। इस नारी के

---

१ 'डॉ. मनमोहन सहगल' - 'उपन्यासकार जैनेंद्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन' -पृ. ५२
प्रकाशक - साहित्य भारती,
संस्करण - १९७६

आन्तरिक सत्य का उल्लेख जैनेंद्रजी ने इस प्रकार किया है " सतीत्व को यहाँ मतलब है .... पुरुष से योग और सहयोग ।" [1]

जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रिश्तों को पति,पत्नी, प्रेमी और प्रेमिका के संबंधों में बनते - बिगड़ते मानसिक तनावों के कारण को गहराई से उद्घाटित करने का ऐसा प्रयत्न है, जो जैनेंद्रकुमार की शैली की पहचान बन गयी है । सामाजिक और आर्थिक विषमता के परिवेश में नारी मन को जैनेंद्रजी ने अपने ढंग और अपनी दृष्टि से समझने की कोशिश की शुरू में इसलिए जैनेंद्रजी शरत्चंद्र के नारी पात्रों से प्रभावित हुए । जैनेंद्रजी ने शरत को पढ कर अनुभव किया और उसपर वे लिखते है " पढकर शरत की मंझली और बडी दीदियाँ, ठीक-ठीक मानो वैसी ही दीदियाँ ,मेरा मन बन गया था । उनके दुःख के साथ मेरे मन में रोना उठता था । जी में अकुलाहट होती थी कि हाय कि इन (पात्रों) पर पडनेवाली विपदा कैसे हो कि सब की सब मैं झेल लूँ ।" [2]

जैनेंद्रजी के इस वक्तव्य से जाहिर है कि नारीमन की पीडा के प्रति वह सदा विशेष संवेदनशील रहे । उनके उपन्यासों का वस्तुकेन्द्र नारी मन की पीडा ही है " परख " से " दशार्क " तक इस पीडा को विभिन्न संदर्भों में जीवन यथार्थ के साथ चित्रित किया गया है ।

जैनेंद्रजी के उपन्यासों में नारी के स्वरूप में उसके अस्तित्व,व्यक्तित्व, और संस्कार,आचरण, अर्थिक स्थिति आदि पर उसकी वैचारिक स्वतंत्रता, अत्यंत सबल एवं सशक्त दिखाई देती है । फ्राइड एडलर, युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों के द्वारा

---

१ 'डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ' - जैनेंद्र उपन्यास और कला ' - पृ. ३३
प्रकाशक - पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर -३, संस्करण - १९७८

२ 'गोपालकृष्ण कौल' - सारिका ' - जैनेंद्रजी की श्रध्दांजलि अंक, जनवरी - १९८९
प्रकाशन, जनवरी

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY १९८९ KOLHAPUR

प्रस्तुत नये वैचारिक सिद्धान्तों के कारण भारत में सामाजिक रुढ़ियों का पोषण गई स्थगित - विकासवाली परम्परा में विकास की नई दिशा और नये चरण स्थापित होते गये । जिसमें प्रतिक्षण नये प्राण और नई शक्ति स्पन्दित होने लगी ।

वर्गीकरण करते हुए यदि हम जैनेंद्र जी के नारी-पात्रों का मूल्यांकन करें, तो सर्व प्रथम वर्ग हमें ऐसी विद्रोहिणी स्त्रियों का मिलता है जो समाज के अत्याचार का विरोध ध्वंसात्मक ढंग से न करके गाँधीवादी सत्याग्रह से करती हैं । तात्पर्य यह कि जैनेंद्रजी के नारी पात्र आधुनिकता गांधीवाद, बौद्धिक धार्मिकता, सहानुभूति और करुणा इन पाँच तत्वों का निर्माण हैं । इसलिए शायद डॅा. गणेशन का विचार है कि वह नारी भव्य है, पुरुष से अधिक मानसिक बल रखनेवाली है, प्रेम तथा अन्य सद्भावनाओं की अधिष्ठात्री है, आत्मशक्ति में अग्रगण्य है - और सब होने के कारण बहुत कुछ अलौकिक और अस्वाभाविक है ।"[१]

इस प्रकार सभी उपन्यासकारों ने नारी को समाज का महत्वपूर्ण अंग माना है । नारी व्यक्ति और समाज के स्तर पर अनेक भूमिकाओंको एक साथ निभाती हुई अनेक रुपों में जीवित रहती है । वे एक साथ माता, बहन, पुत्री, प्रेयसी, तथा वेश्या तक हो सकती हैं । अपने इन विभिन्न रुपों में से वे जैनेंद्र जी किसी न किसी रुप में अवश्य चित्रित हुई हैं ।

---

१ डॅा. मनमोहन सहगल - 'उपन्यासकार जैनेंद्र : मूल्यांकन और मूल्यांकन' - पृ. ६३
प्रकाशन - साहित्य भारती, कृष्णनगर, दिल्ली-१
संस्करण - १९७६

पत्नी --

प्रकृति ने नारी को पुरुष के पूरक रूप में बनाया है। एक के बिना दूसरे का व्यक्तित्व अपूर्ण और अधूरा ही रहता है। विवाह इसी प्राकृतिक विधान का सामाजिक संस्कार है। पत्नी बनकर नारी पुरुष की सहधर्मिणी और अर्द्धांगिनी बनती है, और अपने जीवन की सार्थकता पाती है। पति-पत्नी दोनों के सहयोग से ही दाम्पत्य जीवन का संचालन होता है।

जैनेंद्रजी के 'सुनीता' उपन्यास में सुनीता रूप-गुण सम्पन्न शिक्षिता नारी है। उसका पति श्रीकांत उसके रूप और गुणों पर मोहित है। पति - पत्नी दोनों स्वस्थ और सुन्दर हैं। इसलिए श्रीकांत अपनी पत्नी सुनीता की प्रशंसा करता है। श्रीकांत का मित्र हरिप्रसन्न को लिखे पत्र में यह कहता है कि 'आदमी अपने में अपने को पूरा नहीं पाता। दूसरे की अपेक्षा उसे है ही।' इतना ही नहीं, अपने इस पत्र के साथ भाभी का परिचय देते हुए अपनी पत्नी की शादी से ठीक पहलेवाली गजब की तस्वीर भेजने की योजना बनाता है। श्रीकांत पत्नी के तस्वीर के संबन्ध में पत्र में लिखता है कि 'अपनी भाभी की तस्वीर देखो और कहो, तुम्हें स्त्री से छुट्टी चाहिए?' श्रीकांत भाभी की तस्वीर के आकर्षण की भूमिका बनाने के साथ हरिप्रसन्न से घर पर आने के लिए अनुरोध करता है और लिखता है कि --'मुझसे ज्यादा अपनी भाभी का अनुरोध समझो।' १

जैनेंद्रजी के 'कल्याणी' उपन्यास में कल्याणी विलायत से डाक्टरी पास उच्च शिक्षिता एवं कुशल लेडी डाक्टर है। इसलिए डाक्टर असरानी अपनी

---

१ जैनेंद्रकुमार - 'सुनीता' - पृ.१५
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९८०

पत्नी का ख्याल भी रखते हैं। साथ ही साथ प्रशंसा भी करते हैं। डाक्टर असरानी के मित्र जो गवर्नमेन्ट कालिज में लेक्चरार हैं, इस मित्र कल्याणी की मुलाकात कर रहे हैं " ये कविताएँ इन्होंने कल पाँच रोज में लिखी हैं। पचास से ऊपर हैं। अपनी भाषा की यह मानी हुई कवि हैं, आप जानते ही हैं। हिंदी में भी आप देखेंगी कि यह आगे ही दीखती हैं।"[१]

आगे चलकर अपने मित्र से डॉ. असरानी कल्याणी के ख्याल के बारे में भी बताते हैं " ये सबेरे चार बजे उठ जाती हैं। तभी ठंडे पानीसे नहाती हैं मैं कहता हूं कि इस तरह स्वास्थ्य को खतरा है लेकिन चूँकि इन के पत्थर के जगन्नाथजी कुछ नहीं कहते हैं। इसलिए कुछ नहीं सुनती हैं। यहाँ अस्पताल में रोगियों से निबटने में दो-तीन तो रोज बज ही जाते हैं। कभी और भी देर हो जाती है। लेकिन इनका हाल है कि यहाँ से जाकर नहायेंगी पूजा करेंगी, तब अन्न मुँहसे देंगी। चाहे, इसमें सबेरा शामसे क्यों न मिल जाय। मैं कहता हूँ कि यह धर्म है कि आफत है।"[२]

भारतीय समाज में समय समयपर परिवर्तन होते रहे हैं। इसके अनुसार नारी की स्थिति में भी उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। वैदिक युग में नारी को प्रतिष्ठित पद प्राप्त था तो मध्य-युग में उसे पाप की खान कहा जाने लगा। पर पत्नी धर्म के शाश्वत रूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पति से उसे चाहे प्रेम और आदर मिला चाहे दासी और सेविका का सा शासन और निरादर पत्नी अपने धर्म से विचलित नहीं हुई। जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में पत्नी के इस शाश्वत रूप का विस्तृत एवं बहुमुखी चित्रण मिलता है। नारी एक बार जिसे वरण कर लेती है, आजीवन उसी के प्रति समर्पित रहती है। विषम से विषम परिस्थितियों का जाल उसे अपने प्रेम से डिगा नहीं पाता।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'कल्याणी'- पृ. ८
यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४,
जुलाई - १९६२

२ 'जैनेंद्रकुमार' -'कल्याणी'- पृ. ४९
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लि., बम्बई-४
[illegible] १९६२

जैनेंद्रजी के उपन्यास 'त्यागपत्र' की मृणाल हृदय से सरल और पवित्र है। अपनी आयु से बड़े व्यक्ति के साथ विवाह होनेपर भी वह पतिव्रता धर्म का पालन करना चाहती है। पतिव्रता धर्म का पालन करने के लिए वह मजना तक सच्ची होना आवश्यक समझती है। इसलिए वह अपने पति को अपने पूर्व-प्रेम के विषय में सब कुछ सच-सच बता देती है। मृणाल का शंकालु पति उसकी सरलता और सच्चाई का कोई मूल्य नहीं समझता है और उसे अपने घर से निकाल देता है। इस सच्चाई को उगल देने के परिणाम स्वरूप मृणाल पर विपत्तियोंका पहाड़ टूट पड़ता है। यहाँ मृणाल के मन में चेतावनी का भाव है। वह नियति के हाथ का खिलौना बन कर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश होती है। ऐसी विकट परिस्थितियों में उसकी सहायता करनेवाला उसके लिए देवता है।

'अपने अनन्य प्रेम और निष्ठा केकारण ही पत्नी सदा अपने पति के प्रति समर्पित रहती है। वह कठिनसे कठिन परिस्थितियों में भी विवशता की चरम-सीमा में भी पति के अतिरिक्त किसी भी अन्य पुरुष को अपने मन में स्थान नहीं देती। यही कारण है कि आदि काल से भारतीय धर्म-ग्रंथों में सती और पतिव्रता नारियों की प्रशंसा के गीत गाये गये हैं। नारी का तन चाहे किसी कारणवश कभी पराजित भी हो जाये उसका मन सदा पति के ही नाम माला जपता रहता है।'[१]

पत्नी के इस पतिव्रत का उदाहरण हमें 'सुनीता' में मिलता है। सुनीता शिक्षित सुसंस्कृत गृहिणी है जो अपने पति श्रीकांत के प्रति पूर्णत: समर्पित है। श्रीकान्त जब अपने मित्र हरिप्रसन्न को घर में छोड़कर बाहर चला जाता है और सुनीता को यह आदेश दे जाता है कि हरिप्रसन्न की प्रसन्नता के लिए वह कुछ भी

---

१ 'बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण' - राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - १९८४ - पृ. ३१६

न उठा रखे'[1] तब सुनीता के सामने विकट धर्म-संकट उपस्थित हो जाता है। और जब लाहौर से अपने पति का पत्र मिलता है कि वह कुछ दिनों के लिए उसे भूलकर सम्पूर्णत: हरिप्रसन्न की इच्छानुसार व्यवहार करे तो वह विफल हो जाती है। इस कठिण स्थिति में वह मन ही मन पति से ही प्रश्न करती है 'मुझे बताओ इस तुम्हारी चिट्ठी का क्या यही आशय मैं पाऊँ कि मुझे स्वयं कुछ नहीं रहना है, नियति के बहाव में बहते ही चलना है, धर्म-अधर्म बिसार देना है।'[2]

संभवत: सुनीता अपने जीवन में इतनी विवश कभी भी न हुई थी। वह इन क्षणों में अपने पति का बार-बार स्मरण करती है। वह अपने संपूर्ण अस्तित्व को पति के चरणों में अर्पित कर अपने प्रेम और विश्वास द्वारा उस ऊँचाई तक पहुँचना चाहती है जहाँ वह अभिन्नता का अनुभव कर सके।

ऐसी स्थिति में जब हरिप्रसन्न रात के समय सुनसान निर्जन में क्रांतिकारी दल के सदस्यों से भेंट करने के लिए सुनीता को साथ चलने के लिए कहता है, तो सुनीता रूँआसी-सी हो जाती है। वह हरिप्रसन्न का प्रत्याख्यान कैसे करे, पर जाने के लिए भी उसका मन गवाही नहीं देता। वह हरिप्रसन्न से तर्क करती है, और तर्क में हार कर साथ चलने के लिए सहमत हो जाती है। पर उसके मन में भावों का ऊहापोह चलता रहता है। वह डूबते हुए को तिनके के सहारे की भाँति हरिप्रसन्न से कहती है 'सोच देखिए हरिबाबू। कहोगे तो चलूँगी। क्यों न चलूँगी? आपका कहा टालूँगी नहीं। लेकिन क्या यह जरूरी है?'[3] और अंत में जब वह साथ जाने

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पूर्वोदय प्रकाशक, दिल्ली-२ संस्करण - १९६० - पृ. १७७

२ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण' - राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण - १९६८ - पृ. ३१७

३ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२ संस्करण - १९६० - पृ. १८८

का निश्चय कर लेता है तो उसका मन पति के पैरों से लिपट कर रोना चाहता है। पतिव्रता के सामने यह महान् अग्नि-परीक्षा है। पर पति वहाँ उपस्थित नहीं है, इसलिए वह उनके चित्र से ही शक्ति और विश्वास की भीख माँगता है।

यहाँ से हरिप्रसन्न के जाने तक सुनीता प्राणहीन यंत्र की भाँति संज्ञाशून्य और अचेत बनी रहती है। चलते-फिरते, बैठते, बात करते मानो उसका मन कहीं और हो। पतिप्राणा पत्नी की सहज वृत्ति के अनुसार उसका तन पति के आदेश का पालन करता है, पर उसका मन पति में ही रमा हुआ है। जंगल में पहुँचकर सुनसान सन्नाटे में जब हरिप्रसन्न अपना प्रणय - निवेदन करता है, तब सुनीता जैसे व्यक्ति न होकर कोई कठपुतली हो। उसका तन हरिप्रसन्न को अर्पित है, पर मन वहाँ अनुपस्थित है। फलतः हरिप्रसन्न का आवेश नशे की भाँति चूर-चूर हो जाता है, और सुनीता का पतिव्रत ही उसके सतीत्व का भी रक्षा करता है। हरिप्रसन्न में अब यह शक्ति नहीं कि उससे आँख मिला सके। वह बाहर से ही विदा लेकर चला जाता है।

सुनीता घर आती है तो वह हरिप्रसन्न के चले जाने पर दुःखी है। वह लौटकर आये पति को सब कहानी बता कर कहती है कि अपनी सारी चेष्टा, सारे समर्पण के बावजूद हरिप्रसन्न को वह रोक नहीं पाई। श्रीकान्त इसका मर्म समझाता है और कहता है - 'आवर क्वीन कैन डू नो रोंग' और सुनीता गद्गद् भाव से यही प्रार्थना करती है कि 'मुझे छोड़ कर तुम न जाना। क्या विधाता ने हमें व्यर्थ ही नारी बनाया है? इस प्रार्थना को अधिकार क्या हमें पति के निकट भी न होगा कि स्वामी से कहें "नाथ हमें छोड़कर जाना मत। इस अधिकार से तो तुम सदा-सदा मेरे हो।' १

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पृ० २२६
पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

✓ ⌈ नारी में परिस्थितियों के अनुकूल आत्म-परिवर्तन की एक विलक्षण शक्ति पायी जाती है। परिस्थितियों के अनुसार अपने आत्म-जीवन को ढाल लेने का जितना सहज प्रवृत्ति नारी में है, अपने स्वभावगत गुण न छोड़ने की आन्तरिक प्रेरणा उसमें कम नहीं। इससे जैनेंद्रकुमार के उपन्यास की नारी पुरुष से अधिक सतर्कता के साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकी है। पुरुष के समान अपनी व्यथा भूलने के लिये वह कादम्बिनी नहीं माँगती, उल्लास के स्पन्दन के लिये लालसा का ताण्डव नहीं चाहती क्योंकि दुःख को वह जीवन की शक्ति-परीक्षा के रूप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। |[1]

इसी अनुरूप हम 'कल्याणी' उपन्यास की नायिका 'कल्याणी' में आत्मबल की अनन्त शक्ति है। पति द्वारा अपमानित और लाँछित होनेपर भी वह बौखलाती नहीं है। डाक्टर असरानी भरे बाजार में उसे जूतों से पीटता है, लेकिन वह उफ तक नहीं करती। साधारणत: कोई स्त्री इतना अपमान सहन नहीं कर सकती। कल्याणी के असामान्य व्यवहार का कारण उसका खंडित अहं है। कल्याणी के हृदय का प्रेम-भाव कुंठित हो गया है। डाक्टर असरानी के प्रपंचों ने उसे सब कुछ मूक भाव से स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया है। सामाजिक मर्यादाओंका भय उसे तिल-तिल करके जलने के लिए बाध्य किए हुए है। वह दासी-भाव से मध्य युगीन पत्नी के आदर्श का पालन करती है।

पत्नी के आदर्श पालन करनेवाली जैनेंद्रजी के उपन्यास की 'सुनीता' रूप-गुण सम्पन्न शिक्षिता नारी है। सुनीता परम्परागत भारतीय नारी के रूप में घर को ही अपना सर्वस्व मानती है। उसके लिए परम्परागत पति-धर्म का

---

१ 'महादेवी वर्मा' - 'श्रृंखला की कड़ियाँ' - पृ. २५-२६
प्रकाशक - भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली-६
संस्करण - प्रथम संस्करण - १९७४

पालन करना अनिवार्य है। इसलिए वह उच्च शिक्षिता होनेपर भी चौके - बर्तन और पति की आज्ञा के पालन तक ही अपने को सीमित रखता है।

सुनीता के चरित्र की विशेषता: यह है कि वह पति-परायणा है। अपने मित्र हरिप्रसन्न की खोज में श्रीकांत की विफलता से सुनीता उसकी मैत्री घनिष्ठता का अनुमान कर लेती है। यही कारण है कि जब हरिप्रसन्न अचानक घरमें आ जाता है तो सुनीता भी उसे इस प्रकार ग्रहण करती है मानो हरिप्रसन्न के साथ उसका व्यवहार संयत होते हुए भी उन्मुक्त और निर्भय है।

कल्याणी पति की इच्छानुसार सारे कार्य करती है। वह डाक्टरी करती है, पति की प्रसन्नता के लिए अपनी इच्छा के विरुध्द प्रीमियर के स्वागत की तैयारी करती है पति से पिटने पर भी पति की अवहेलना नहीं करती उल्टे पति उसे बहुत चाहते हैं कहकर उसकी प्रशंसा ही करती रहती है। किंतु स्वार्थ में अंधे डॉ.असरानी के मन में अपनी पत्नी के प्रति बराबर संदेह बना रहता है। पति की इच्छा के विरोध करना कल्याणी की प्रवृत्ति नहीं है और न कदाचित उसमें इसकी शक्ति ही है। वह समर्पण को ही नारी जीवन की सिध्दि मानती है। बहुधा दाम्पत्य जीवन की विसंगति के समाज पत्नी को ही दोषी ठहराता है। इस प्रकार का अपवाद सुनकर कल्याणी का मन व्यंग्य कर ही उठता है -- 'स्त्री निर्दोषा हो सकती है तो यही है कि वह स्त्री है।'[१]

वैसे ही कल्याणी भी पति के अनन्य प्रेम के बल पर पति का विश्वास पाकर ही वह हरिप्रसन्न के साथ अकेला रहना स्वीकार करती है। श्रीकान्त के चले जाने के बाद जब हरिप्रसन्न जाना चाहता है तो वह उसे हर प्रकार से रोकने की चेष्टा करती है। वह उससे तर्क करती है,आग्रह देती है, किन्तु ऐसा लगता है

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - पृ. २२

हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई-४,

जुलाई- १९६२

कि इन सब कार्यों के मूल में पति की आज्ञा ही उसे यंत्रवत् घुमा रही है। श्रीकांत की आज्ञा का ध्यान उसे बराबर रहता है। श्रीकांत हरिप्रसन्न के सुमार्ग पर लाने के लिए इतना व्यग्र है कि वह उसके लिए स्वयं भी टूटने को प्रस्तुत है। वह एक ओर हरिप्रसन्न से कहता है "हरि घबड़ाना नहीं, हम टूटें तो टूटें पर तुम मत झुकना, निर्मम रहना, बढ़ते रहना, तथा मेरे पीछे अपनी भाभी को जरा भी कम अपनी न समझना।" तो दूसरी ओर श्रीकांत लाँहार से सुनीता को पत्र में लिखता है "तुमसे कहता हूँ कि उसको किसी बात पर बिगड़ना मत। सुनीता, तुम मुझे जानती हो कि मैं तुम्हें गलत नहीं समझ सकता। तब तुमसे मैं चाहता हूँ इन कुछ दिनों के लिए मेरे ख्याल को अपने से तुम बिल्कुल दूर कर देना। सच पूछो तो इसी के लिए मैं यह अतिरिक्त दिन बिता रहा हूँ।"[१]

श्रीकांत के इस पत्र में स्पष्ट संकेत है कि वह हरिप्रसन्न को हर प्रकार से संतुष्ट करे, अपनी इच्छा को हरिप्रसन्न की वैराग्य वृत्ति को यदि सुनीता किसी भी प्रकार कम कर सके तो अत्यन्त शुभ होगा। अत: श्रीकांत के इस संकेत से सुनीता की नैतिक मान्यताओं को धक्का लगता है, उसके मन में तनाव होने लगता है। उसे बुरा भी लगता है कि पति ही अपनी पत्नी को कैसी बातें लिख रहे हैं, मुझे दूर ही मानो, मुझे भूल जाओ। पति के प्रतिनिधि इस पत्र को क्या सुनीता स्वीकार करके उससे दूर ही चली जाय ? उसे भूल-भूल ही जाय।"[२]

पत्नी को पति की अर्धांगिनी माना गया है। वह उसके सुख-दु:ख में समान रूप से साझीदार बनती है। आज के समाज में वह बात केवल पत्नी की सामाजिक स्थिति से ही सम्बन्ध रखती हो, ऐसा नहीं है। पति के मन को समझना और उसके मनोनुकूल अपने जीवन को ढालना भी पत्नी का कर्तव्य बन गया

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पृ. १८७
पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९६०

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पृ. १८८
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९६०

है। जैनेंद्रजी के 'सुनीता' के सुनीता की पति की मनोकामना पूरी करने के लिए अपने पतिव्रत को भी बाजी लगा देती है।

विवाह होते ही नारी के जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आ जाता है। वह अपने माता-पिता से दूर पति के साथ रहने लगती है। मायके का जीवन और वातावरण त्यागकर अब उसे पति की जीवन प्रणाली और ससुराल का वातावरण अपनाना पड़ता है। इस प्रकार पति का जीवन और उसका जीवन अभिन्न हो जाता है। पति के सुख-दुःख, आशा-निराशा, आचार-विचार और महत्वाकांक्षाओं को अपना कर ही वह सुनीता के प्रति रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखित 'घरे बाहिरे' से जोड़ा गया है। दोनों की समस्या एक ही है जिसको स्वयं जैनेंद्रजी ने भी स्वीकार किया है। फिर भी दोनों के स्वरूप में बहुत अन्तर है जिसकी ओर जैनेंद्रजी ने संकेत भी किया है। सुनीता की पति-परायणता ही उसे हरिप्रसन्न के प्रति और भी स्नेहशील होने का बल देती है। वह प्रारंभ से ही अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक है और कहीं भी गृहिणी धर्म से च्युत नहीं होती। ऐसा चित्रण रवीन्द्र के 'घरबाहिरे' में नहीं हुआ है।

✓ |जैनेंद्रजी के उपन्यासों में पत्नी के इस शाश्वत रूप का विस्तृत और बहुमुखी चित्रण है। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में पति के प्रति उसका अनन्य प्रेम और विश्वास अटल रहता है। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण सेवा और आत्म-त्याग की मूर्ति बनी अपना गृहिणी और सह-धर्मिणी का रूप निभाती है। पति-प्रेम की अनन्यता के कारण वह पति का बड़े-से बड़ा अत्याचार चुपचाप सह लेती है, और हर प्रकार से पति की उन्नति और प्रगति की कामना करती रहती है।|

कल्याणी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण सेवा और आत्म-त्याग की मूर्ति बनी है। अपना गृहिणी और सहधर्मिणी का रूप निभाती है। कल्याणी के सम्मुख एक ओर विलायती ठाट-बाट, पाश्चात्य शिक्षा-संस्कृति, नारी स्वातंत्र्य एवं उसकी आर्थिक समस्याएँ हैं तो दूसरी ओर भारतीय गृहिस्थ प्राचीन आदर्श।

इन दोनों में से वह किसी एक की सहधर्मिणी और अर्धांगिनी बनती है । उसका अनन्य प्रेम और पातिव्रत इसी अभिन्नता की कसौटी पर कसा जाता है । इसी अभिन्नता के कारण वह पति से न कोई दुराव रखती है, न पति को ही रखने देती है । जैनेंद्रजी की 'त्यागपत्र' की नायिका 'मृणाल' इससे सहमत है ।

मृणाल मायके का जीवन और वातावरण त्यागकर अब उसे पति की जीवन-प्रणाली और ससुराल का वातावरण अपनाना पड़ता है । मृणाल पतिगृह में अपने पुराने जीवन को भुलाकर निर्मल मन से अपनी पूर्वाकांक्षाओं की चर्चा पति से करती है । पति से कोई दुराव न रखने का प्रयास करती है । मृणाल किशोरी अवस्था में जिस युवक से प्रेम करती है, अभिभावक उसकी परवाह न करके, ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है, और उसका यह सच्चापन ही उसके लिए अभिशाप बन जाता है, क्योंकि उसका पति उसकी विवाह-पूर्व-प्रेम की बात सुनकर उसे त्याग देता है ।

विवाहेत्तर आकर्षण की समस्या भी पूर्वाकर्षण की भाँति ही विषम है । नारी के विवाहेत्तर आकर्षण की समस्या का संकेत सर्व प्रथम जैनेंद्रजी ने 'सुनीता' में किया था । किंतु आदर्शवादी होने के कारण जैनेंद्रजी ने इसको घर-बाहर की समस्या के रूप में रखा और नारी के पर-पुरुष आकर्षण को पति-परायणता का कवच पहनाकर यथार्थ के आघात से बचा लिया । इसलिए हरिप्रसन्न के प्रति सुनीता का आकर्षण दाम्पत्य जीवन में व्याघात नहीं बनता । अपनाना चाहती है किंतु उसे अनुभव होता है कि उसके पति संतुष्ट नहीं हैं । इसलिए वह अपने पति डाक्टर असरानी से कहती है मैं आपके मन की गृहलक्ष्मी बनकर स्वयं भी रहना चाहती हूँ । पर वह तभी रह सकती हूँ जब डाक्टरनी न रहूँ । डाक्टर होकर अन्तःपुर की शोभा मुझसे बहुत बढ़ेगी । उस हालत में हर किसी के सामने मुँह उघाड़े मिलना और बोलना होता है ..... दोनों में से कोई एक मुझे चुनकर दे दो । पातिव्रत या डाक्टरी की कमाई कर दूँ । दोनों साथ होना कठिन है ।

पैर दो नावों पर रहेंगे तो हालत डगमग रहेगी और जो मेरे चुनने की बात हो तो मैं गृहिणी रहूँगी, डाक्टर नहीं बनना चाहती।' [1]

लेकिन कुछ दिनों के बाद कल्याणी अनुभव करती हैं कि, उनके दवाखाने की स्थिति बहुत गिर गई है। पति भी उनके गृहदेवी बनने से प्रसन्न नहीं हैं। वे चाहते हैं कि वह डाक्टरी का कार्य पुन: आरंभ कर दे। अत: पुन्हा कल्याणी डाक्टरी में जुट जाती हैं और धनोपार्जन करती हैं। किंतु इस स्थिति में भी डाक्टर असरानी संतुष्ट नहीं हो पाते। वे अपनी पद-प्रतिष्ठा और अर्थ-लाभ के लिए अपनी पत्नी के सहयोग की अपेक्षा तो करते हैं किंतु उसे तनिक भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। फिर भी कल्याणी पति की उन्नति और प्रगति की कामना करती हुई दिखाई देती है।

परिवार-रूपी गाड़ी में पति-पत्नी का स्थान पहियों के समान है। जिस प्रकार समस्त गाड़ी का बोझा पहियों पर निर्भर रहता है, उनके दुर्बल होने से गाड़ी कठिनाई से आगे चल पाती है, वह जल्दी टूट जाती है, उसी प्रकार पति-पत्नी संबंध अच्छे न होने से, उनके अपने-अपने कर्तव्य और दायित्व का पालन न करने से परिवार न तो प्रसन्न रह सकता है। वह एक दिन टूट कर ही रहता है।

पति-पत्नी के सम्बधों की दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञान होता है कि कल्याणी भारतीय पत्नी होने के नाते पति का प्रतिरोध नहीं कर सकती। इसलिए उसके जीवन की मरण प्रवृत्ति का पर आक्रमणावेश अवरुध होकर स्व-आक्रमणावेग में परिवर्तित हो जाता है। परिणामत: कल्याणी के चरित्र में मृत्यु तत्व का आकर्षण उपन्यास के प्रारंभ से ही दिखाई देने लगता है।

---

[1] 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. ३९
यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर,
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई -४, संस्करण - १९६२

'वह जीवन का आरम्भ जैसे नये सिरे से करना चाहती है।'[१]

जीवन उसके लिए दु:ख की कविता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह वकील साहब से कहती है कि -"मैं इस पेट के बच्चे के लिए जीती हूँ।'[२]

वैसे सुखदा उपन्यास में सुखदा की हीनता ग्रन्थि को दो अन्य प्रवृत्तियोंका अवलंब मिलता है - वे है 'विजय-वासना' तथा 'दमित कामुकता'। सुखदा में प्रत्र-विजयी बनने की एक अदम्य तृष्णा दीख पड़ती है।

'सुखदा' अहंवादी है। बड़े घर में पली हुई माता-पिता की इकलौती बेटी है। वह पति को नीचा, तुच्छ समझती है, क्योंकि विवाहपूर्ण होनेवाली आकांक्षा पति में नहीं है और आर्थिक समस्या के कारण वह और भी तंग दिखाई देती है। इसलिए जैनेंद्रकुमार के पात्र किसी के हाथ के कठपुतले नहीं है। वे एक सजीव पात्र दिखाई देते हैं। सुखदा का निजी कथन अपने पति के बारे में ' मेरे स्वामी जब कभी मुझसे बाते कहते, बहुत धीमे कहते और इस प्रकार कहते मानों अपनी इच्छा का आरोप मुझपर बिलकुल न करना चाहते हो। पर यही बात मुझको और भी बुरी लगती, क्योंकि उनके कथन में पकड़ सकने योग्य और आपत्ति करने योग्य कोई बात नहीं पाती थी। मैं सोचती थी कि किसी विश्वास में तो उनका अधिकार भी-छिपा है। यह विश्वास लोप है, भीतर कठिन पुरुषार्थ है। पर वह पुरुषार्थ क्यों सामने नहीं पड़ता है -- इस पर मुझे खीझा चढ़ आती थी।'[३]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. ११
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लि., बम्बई-४
संस्करण - १९६२

२ 'जैनेंद्रकुमार' - कल्याणी - - पृ. ५७
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४,
संस्करण -१९६१

३ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - - पृ. २३
पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

सुखदा अपने पति से ही उसे मिटिंग का ज्यादा महत्व होता हैं। पति-पत्नी में विश्वास होना चाहिए। एक-दूसरे से दोनों ने समझाने का प्रयास करना चाहिए। पति के मामले से ही देश का मामला महत्वपूर्ण मानती हैं। साढ़े छः बजे मिटिंग थी लेट हो गयी। पति-पत्नी एकसे जानेवाले थे। सीनेमा को भी जानेवाले थे। लेकिन सुखदा ने इस खेल पर पानी फेर दिया हैं। उसे घर से बाहर जाना पसन्द हैं वह भी अकेली जाना अधिक पसन्द हैं। लेकिन पति कर्तव्य के साथ पूछता हैं कि कब तक लौटोगी ? लेकिन उसे यह अच्छा नहीं लगता।

सुखदा की हीनता-ग्रंथि की में श्रेष्ठता ग्रंथि भी कह सकती हूँ, क्योंकि वह मैं पन में अधिक विश्वास रखती हैं। अपने को श्रेष्ठ तथा अन्य को तुच्छ मानकर ही वह जीवन की सभी क्रियाओं का मूल्यांकन करती हैं। स्वयं हीन,अयोग्य होनेपर भी दूसरे को ओछा समझने एवं निरंतर अपने को दूसरे से श्रेष्ठ सिध्द करने की वृत्ति श्रेष्ठता ग्रंथि के नाम से भी जानी जा सकती हैं।

पति उसके हठ की बल से उपेक्षा कर दे -- "स्वामी आज्ञा-पालन में सचमुच उसी शाम नैनीताल के लिए रवाना हो गये और मैं जाने किस गहरी चोट से सुन्न होकर रह गई। नहीं हो सका कि मैं उसको रोक लूँ चरण पकड़ लूँ, कहूँ कि तुम तो स्वामी हो, मुझको दासी की तरह रखो। झटपट मेरी बात मान न जाया करो,बल्कि आगे बढ़कर जोर के साथ कह दो कि मुझे ही तुम्हारी बात माननी होगी नहीं तो नहीं चलेगा ?" [१]

यह मानसिक द्वन्द्व, क्योंकि पति ओर से सबल अवरोध प्राप्त नहीं करता ,इसीलिए सुखदा में क्षोभपूर्ण हीनता उत्पन्न करता हैं। वह अपने आप में निर्णय नहीं कर पाता कि उसे अनुवर्तिनी बनना हैं, या पति को अपना अनुवर्ती बनना हैं। इसी उधेड़-बुन में उस पर बाहर का आघात होता हैं और एक अनचाही

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'सुखदा' - - पृ. ११०-१११

पूर्वोदय प्रकाशक,नयी दिल्ली-२,

संस्करण - १९६०

तुलना के कारण वह अपने स्वामी को हीन समझने लगती है ।

अपने बड़प्पन-प्रदर्शन के लोभ में ही वह घर से बाहर निकलकर बाहर का ही हो रहा । किसी सभा की उपाध्यक्षा बनना अथवा मुख्य अतिथि रूप में भाषण झाड़ना उसे प्रिय लगने लगा । स्वामी का अविकल स्नेह उसे सदैव मिलता रहा, जिससे उसके स्वतंत्र मन की स्वच्छंद वासनाएँ नित्य नए रूप में बदलने लगी । सुखदा अनेकधा अनेक श्रेष्ठ पति का अवमूल्यन कर बैठती थी । अपनी सुन्दरता का आभास तो उसे पहले भी था किंतु पति के माँगध्य को देखकर उसने असामान्य रूपसी होने की मिथ्या धारणा पोषित कर ली थी । " मैंने जाना था कि मैं सुंदरी हूँ । इसका गर्व मुझे था । लेकिन पति मुझे सामने बिठाकर बिना कुछ बोले लगातार कई मिनट तक मुग्ध-दृष्टि से निहारते रह जाते थे । तब मैंने मन-ही-मन मान लिया कि असामान्य रूप से रूपसी हूँ । "[१]

इसी प्रकार पति को अनुवर्ती देखकर उसे अपनी योग्यता और सामर्थ्य का मिथ्या गुमान हो गया था । उसी जोश मे वह अनेकधा पति को डाँट-फटकार भी कर लेती । एक बार तो क्रोध में उसने पति को " जानवर " तक कह डाला ।

सुखदा की " दमित कामुकता " भी उसकी कुंठाओं में सहयोगी होकर कथानक को विकास दे रही है । अपने को पति के परिवार, वंश तथा बौध्दिक स्तर से श्रेष्ठ मानकर चलनेवाली नायिका कभी सहर्ष आत्म-समर्पण नहीं कर सकी थी । इतना ही नहीं, परिवार में विनोद की वृध्दि उसको खलने लगी थी । वह विचार भी नहीं करना चाहती कि पति नाम का कोई पुरुष है । जो उसे अविकल प्रेम का दान दे रहा है । मानवी होने के नाते कामवासना की स्थिति तो

---

१ ' जैनेंद्रकुमार ' - ' सुखदा ' - - पृ.९
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९८०

स्वाभाविक थी ही, इसलिए जब उसका सम्पर्क लाल से बना, तो वह अनचाहे ही उसकी ओर खिंची चली गई । उसके विलास-भवन में जाकर रहने को भी तत्पर हुई । धीरे-धीरे पति से विमुख हो गई । लाल से उसे एक ऐसा आत्मतृप्ति-सी अनुभव होने लगी थी, जो उसे पति कांत से नहीं मिल पाई थी । दाम्पत्य में सब कुछ होते हुए भी अपनी अदम्य और व्यापक एषणाओं के कारण उसकी कामवासना अतृप्त थी, दमित थी ।

सुखदा उपन्यास में कांत की घर की स्थिति विकट है । उस स्थितिपर सुखदा ने अनेक बार लाभ उठाया है । पति की स्थिति, घर की परिस्थिति अपनी चादर से बाहर पैर फैलाकर भी अपने अहम् को तुष्ट देखने की वांछा से पीडित थी, यह भी संभव है कि संपति या योग्यता का गौरव मानने से नहीं चूकती थी, किंतु फिर भी ज्यों-त्यों गृहस्थी की गाड़ी खिंच तो रही थी, दाम्पत्य जीवन कट तो रहा था । ऐसे में गंगासिंह का घर में प्रवेश 'घर में बाहर का प्रवेश' बन गया । घरेलू नौकर के रूप में परिवार में आश्रय लेनेवाला वह युवक जाने क्या क्रान्तिकारी पग उठाकर अकस्मात सुखदा के जीवन में आग लगा गया । सुखदा तो जैसे विक्षिप्त हो गई उसके भीतर एक भाव-विस्फोट-सा हो रहा था । एक क्रांतिकारी, जिस पर देश को गर्व है, उसके परिवार में रहा । इस परिदृश्य से पूर्ण परिचिता न होते हुए भी वह बदहवासी में अपने दाम्पत्य पर ही आघात आरम्भ कर देती है । पति को फटकार पिलाती हुई कहती है 'चुप रहो, बातें न बनाओ । तुम कुछ नहीं जानते । क्रान्तिकारी को मैं जानती हूँ । तुम तो अपनी नौकरी संभालो । चले उसे समझाने । उसके पैर की धूल भी तुम हो ?'[1]

'घर में बाहर का' दूसरा प्रवेश लाल के आगमन से होता है । लाल एक ऐसा पात्र है, जिसके स्वच्छन्द व्यवहार, मुक्त आचरण, सबल पौरुष और हार्दिकता का

---

१ 'जैनेंद्रकुमार - 'सुखदा' - पृ. १७
पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

विश्वास पात्र होने के कारण स्वयं सुखदा उसकी ओर धीरे-धीरे आकर्षित होने लगता है। वह भूल जाता है कि वह किसी की विवाहिता पत्नी भी है। लाल उसे बाहों में भरता, कंधों से थामना और अन्य आपत्ति जनक चेष्टाएँ करता है, किंतु किसी रहस्यमय मोह के कारण वह उसका विरोध नहीं कर पाती। कान्त के सामने भी लाल का मुक्त व्यवहार सुखदा को संकुचित नहीं करता और नही पति के द्वारा की जानेवाली लाल और सुखदा के एक ही कक्ष में ठहरने की व्यवस्था का विरोध वह कर सकी। परिणामत: पति दूर हटता गया और लाल निकट आता गया। पति के अधिकार से छूट भागने की लालसा उसमें उभरने लगी। इस लिए पहले उसने विलास भवन में जाकर रहने की योजना की और बाद में अन्त की ओर बढते हुए पति का घर छोड़कर माँ के यहाँ जा रही।

सुखदा गृहिणी की समस्याओं और अड़चनों को समझती है, अपनी सामाजिक बाधाओं और क्रान्तिकारी शिबिर में वह सही जाती है, गिनी नहीं जाती की चेतना से भी वह सजग है, फिर भी कुछ है जो उसे निरन्तर भारत से बाहर की ओर खींच रहा है जिसका संकेत उसकी आत्म-स्वीकृति- ' इस बीच जाने किस एक अनिर्दिष्ट शक्ति से मैं पति से स्वाधीन होता चली गई। '[1] तथा उसका घोषणा ' घर की दासी जो स्त्री बन सकती है, वह मैं नहीं हूँ। '[2] मैं मिश्रा हूँ। गृहस्थ बन्धनों को जानते - समझते भी वह मुक्त होने पर तुली है। मुक्तिलब्धि का सामर्थ उसमें है। वह पति से यह कहने का साहस जुटा सकती है ' मैं इस सभा में जाऊँगी, तुम रोक नहीं सकते। ' तात्पर्य यह कि सुखदा का अहम् ही उसकी असामान्यता तथा अन्तर्द्वन्द्व का आधार है। जो वह चाहती है, उसकी उसे चेतना नही, उपलब्धि भी नहीं, प्राप्य से वह असंतुष्ट है - यही उसकी मानसिक

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली, दरियागंज, २, संस्करण - १९६० - पृ. २२

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली, दरियागंज-२, संस्करण - १९६० - पृ. २४

अतृप्ति है । हमारी दृष्टि में वह एक ही समय अनेक मनोविकारों से पीड़ित है । पति के प्रति उसका शील कब और क्यों क्रोध और घृणा में बदल जाता है, इस के लिए उसे स्वयं खेद है । उसकी यही रुग्णता (Morbidity) उसे एक असंतुलित-सा व्यक्तित्व बना डालती है ।

सुखदा में अहम् का उत्तरोत्तर विकास हुआ है । आरंभ में उसे अपने परिवार और सम्पन्नता का गर्व था, यौवनागमन पर उसे रूप-गर्विता भी समझा गया । किंतु सुन्दरी होने का प्रमाण पत्र उसे पति के व्यवहार से मिलने लगा, जो उसमें अहम् भाव जागृत हुआ । उसकी आत्म-स्वीकृति है 'मैंने जाना था कि मैं सुंदरी हूँ । इसका गर्व मुझे था । लेकिन पति मुझे सामने बिठाकर बिना कुछ बोले लगातार कई मिनट तक मुग्ध-दृष्टि से निहारते रह जाते थे । तब मैंने मन-ही-मन मान लिया कि मैं असामान्य रूप से रूपसी हूँ ।' [१]

इस अहम्-भाव की पुष्टि धीरे-धीरे पति के अडिग विश्वास, स्नेह और समर्पण की प्रवृत्तियों से हुई । सुखदा के ऐसे आत्म-कथनों -' किसी के प्रति सम्बन्धों में रस की घनता उत्पन्न हुई जा रही है, ऐसा बोध भी मुझे कभी-कभी हुआ है .... पति मुझ पर अडिग विश्वास कवच की भाँति मुझे सुरक्षित रखे रहे हैं ।' [२]

पति का अडिग विश्वास,ठोस व्यवहार एवं अदम्य शील कुछ इस सीमा तक बढ़ गए थे कि दाम्पत्य के शारीरिक कर्तव्यों की उपेक्षा-सी होती रह गई थी । परिणामत: दोनों का दाम्पत्य असामान्य का स्पर्श करने लगा था । सुखदा की दमित वासना ही उसके भीतर कान्त के प्रति विमुखता और मिथ्या परिकल्पना के भ्रम से लाल के प्रति उन्मुखता जगाने लगी थी । लाल के प्रति सुखदा के मन में रस की घनता अजाने में ही पनपने लगा था । पति से यह रहस्य छिपा नहीं है, किंतु

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'सुखदा'- - पृ.९
पूर्वोदय प्रकाशक,नयी दिल्ली,दरियागंज,
संस्करण - १९६०

२ 'जैनेंद्रकुमार' -'सुखदा'- - पृ.१३
पूर्वोदय प्रकाशक,नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९६०

शीलवश वह सुखदा को वश करने की अपेक्षा उसे लाल के निकट उठने-बैठने का मौका सुलभ करता है किंतु ' प्यार कहर देता हूँ ' का दावा भी वह करता है। पति का यह संकेत ' लाल तुम्हें प्यार करता है। .... और तुम सोचती होगी कि तुम प्यार नहीं कर सकती।' [1] एक बार भी सुखदा को हिला देता है। किंतु निरन्तर बदलती हुई परिस्थितियाँ आत्मा को पुन: राख की परत में छिपा लेती हैं। सुखदा, वास्तव में अपने पति को पहचान सकने में असमर्थ रही है।

सुखदा अपने पति को पौरुषपूर्ण युक्त और सहज आक्रामक भी देखना चाहती है, पराजित भी। वह अनेकधा अपने पति के अविचल प्रेम एवं अहंग विश्वास को पाकर वह अपनी नारी सीमा को धन्य समझने लगती है और कभी उसी पति के सद्व्यवहार का उत्तर विषैले, व्यंग्य-भरे और बेहूदे व्यवहार से देती है। दो मिनट पहले पति के लिए आग्रह प्रेम-सागर में डुबकियाँ लगाते होने पर भी, पति का सामना होते ही जाने उसमें कैसा परिवर्तन आ जाता है कि उसके व्यवहार में उपेक्षा और घृणा व्यक्त होने लगती है। सुखदा का अन्तर्द्वन्द्व केवल अपने विवाहित जीवन साथी के प्रति ही नहीं है। बल्कि प्रत्येक कदम पर वह द्वन्द्व में उलझ जाती है।

जैनेंद्रजी के 'कल्याणी' उपन्यास में आधुनिक नारी की समस्या लेकर चले हैं। उसके सम्मुख एक ओर तो वैभव विलास की भौतिक चकाचौंध है और दूसरी ओर भारतीय गृहस्थी का आदर्श। साथ ही 'कल्याणी' में 'घर और बाहर' दोनों की समस्या के समाधान की भी चेष्टा की गयी है। 'कल्याणी घर और बाहर के मध्य स्वयं टूटती रहती है पर घर को टूटने से बचा लेती है।' [2]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुखदा' - - पृ. १२२
पूर्वोदय प्रकाशक, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९६०

२ 'डॉ. सावित्री मठपाल' - जैनेंद्रकुमार के उपन्यासों में नारी-पात्र - पृ. ५८
उमरावसिंह मंगल प्रकाशन, जयपुर-१,
संस्करण - १९६८

वह पति को देवता मानती हैं। कहती हैं --" व्यक्ति रुप में सदेह बनकर पति के स्थान में चाहे जो हो, कैसा ही वह अपूर्ण हो, स्त्री उसको देवता बना सकती हैं।" १

जैनेंद्रजी ने कल्याणी उपन्यास में घर और बाहर की अगली कड़ी हैं। वह खुद डाक्टरीन होते हुए भी पति से रास्तेपर मार खाना कोई भी स्त्री सहन नहीं कर सकती थी लेकिन जैनेंद्रजी ने यहाँ एक भारतीय आदर्श नारी का रुप दिखाने का प्रयास किया हैं। पति जैसा कहे उसकी आज्ञा का पालन करती हैं। इस उपन्यास में आधुनिक नारी की समस्या को लेने का प्रयास किया हैं।

लेकिन इसके विपरित वह सुखदा उपन्यास में आधुनिक नारी की समस्या को ही लेना चाहते हैं जो पति को तुच्छ समझती हैं और क्रांतिकारी नेता लाल के जाल में फसती हैं। सुनीता उपन्यास की पत्नी भी आदर्श भारतीय नारी दिखायी दी हैं। जो पति के आज्ञा के कारण हरिप्रसन्न को खुश करने का प्रयास करती हैं। लेकिन ये दोनों पत्नी भारतीय आदर्शता को धक्का देनेवाली दिखाई देते हैं। लेकिन मृणाल एक आदर्श भारतीय पत्नी दिखायी दी हैं। उन्होंने पति को नहीं त्यागा तो पति ने उसे त्याग दिया हैं। ऐसा आदर्श पत्नीत्व जैनेंद्रजी ने दिखाने का प्रयास किया हैं।

---

१ जैनेंद्रकुमार - कल्याणी - - पृ. ७२
यशोधर मोदी, मॅनेजिंग डायरेक्टर
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर, प्राइवेट लि., गिरगांव,
बम्बई-४, संस्करण - १९६२

प्रेमिका --

मुंशी प्रेमचंद प्रेमिका के बारे में कहते हैं " पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्म-समर्पन से ।" [१] डॉ. बिंदु अग्रवाल जी प्रेमिका के बारे में अपना मत स्पष्ट करती हैं " स्त्री-पुरुष का आकर्षण एक प्राकृतिक सत्य है । इसी आकर्षण पर सृष्टि का विकास अवलंबित है । इसलिए आदिकाल से ही नर-नारी के सम्बधों में प्रेमतत्वों को अनिवार्य माना गया है ।" [२]

प्राचीन काल से हमारे समाज की यह मान्यता रही है कि नारी एक बार जिस पुरुष से प्रेम करती है जीवन भर उसी की होकर रहती है । उसके जीवन की सार्थकता ही इस मिलन में है । यदि परिस्थितिवश प्रेमी से उसका मिलन नहीं हो पाता है तो वह अपने जीवन को निरर्थक समझकर प्राण तक त्याग कर देती है । भारतीय प्रेमिका का आदर्श पार्वती और सावित्री है जो कठिण से कठिण बाधाओं को अपने प्रेम के बल से जीत कर अपने प्रेमी का संयोग प्राप्त करती है । ..... जैनेंद्रजी के प्रमुख नारीप्रधान उपन्यास - "परख", 'त्यागपत्र', 'सुखदा', 'सुनीता,' कल्याणी' है । इन उपन्यासों में जैनेंद्रजी ने नारी के प्रेमिका रूप की अपने ही तरीके से व्याख्या की है ---

जैनेंद्रजी के " परख " की कट्टो तो निःस्वार्थ समर्पित प्रेम की साकार प्रतिमूर्ति है । वह अल्हड ग्रामीण बाल-विधवा है जिसके मन में काम-वासना का लेश भी नहीं है । वह अत्यंत निश्छल और सात्विक भाव से सत्यधन को प्रेम करती है । उसका मन जितना पवित्र और मुक्त है उतनाही उसका व्यवहार संयमित और

---

१ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यासों में नारी चित्रण' - - पृ. ३२७
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६, संस्करण-१९६८

२ 'डॉ. बिंदु अग्रवाल - 'हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण' - - पृ. ३२७
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६८

सरल है। उसका प्रेम उसके मन में कोई झिझक, कोई संकोच नहीं उत्पन्न करता, क्योंकि वह अपने प्रेम का कोई प्रतिदान नहीं चाहती। यह निष्काम समर्पित है। प्रेम उसके नारी-मन की ऐसी सहज, अकृत्रिम और स्वाभाविक क्रिया है जैसे सूर्य के दर्शनकर कमलिनी का खिलना। सारे उपन्यास में कट्टो की यह खिलखिलाहट गूँजती रहती है।

यही कारण है कि जब सत्यधन उसकी ओर से उदासीन होकर गरिमा से विवाह करना चाहता है, तो उसे न दुःख होता है न आश्चर्य। जिसमें उसके प्रिय को संतोष उसी में, उसका संतोष है, क्योंकि समर्पित होने के बाद उसका अलग कोई अस्तित्व है ही कहाँ। वह सत्यधन से स्वयं कहती है, ' जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टो की खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा विश्वास रखो। तुम्हारी खुशी में उसकी खुशी है। तुम्हारे सोच में उसकी मौत है। अपने कामों में कट्टो की गिनती मत करो - वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें ही शामिल है। बस। तुम ब्याह करना चाहते हो, तो कट्टो तुम्हारे सबसे पहले ब्याह चाहती है। ओ हो वह कितनी खुश होगी, खूब खूब खुशी होगी। तुम कट्टो को क्या समझते हो ? वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिंदा रह सकेगी ? और क्या समझते हो वह तुम्हें समझती ही नहीं ? वह तुम्हें खूब समझती है। तुम जो करोगे अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छे में खूब आनन्द मनायेगी। तुम तो कट्टो के मालिक हो - फिर उसकी फिकर क्यों करते हो ? ...'[१]

अपने इसी निःस्व, एकान्त समर्पण के कारण कट्टो को गरिमा से ईर्ष्या नहीं होती प्रत्युत वह उसको सहज ही अपनी बड़ी बहिन के रूप में स्वीकार करती है। सत्यधन के माध्यम से गरिमा भी मानो उसके प्रेम की पात्र बन जाती है। 'वह अपनी सोहग पिटारी को जिसे वह अपनी सबसे मूल्यवान और प्यारी वस्तु समझती है, जिसके साथ उसकी कोमल भावनाएँ सम्बध्द हैं।'[२] उसी पिटारी को वह सहर्ष

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ७०
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
संस्करण - १९४१

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ७५
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लि., संस्करण - १९४१

गरिमा को भेंट-स्वरूप भेज देती है।

इसी सात्विक और निस्वार्थ प्रेम के कारण कट्टो के लिए मिलन-विरह में कोई अन्तर नहीं पड़ता। वरन् उसका तो मत है कि मिलन में भले ही प्रेम का अन्त हो जाये विरह में तो प्रेम अनिवार्य रूप से प्रतिक्षण साथ रहता है, यही कारण है कि सत्यधन को बाँध रखने की कल्पना नहीं करती। वह विरह को सच्चे प्रेम-जीवन का प्रतीक मानकर स्वीकार करती है। उसका प्रेम शारीरिक मिलन अथवा विवाह की अपेक्षा नहीं रखता। वह समर्पिता है क्योंकि उसका मत समर्पित है। इसलिए सत्यधन के आग्रह करने पर भी वह बिहारी से विवाह करने को तैयार नहीं होती। केवल उसके विवाह के मार्ग में कोई बाधा न पड़े इसी विचार से वह बिहारी के साथ सेवा-व्रत में सह योगिनी बनने की स्वीकृति देती है। इस प्रकार भोली, निश्छल कट्टो के रूप में हमें युग-युग वंदित शाश्वत प्रेम की ही व्याख्या के दर्शन होते हैं।

रामवृक्ष बेनीपुरी जी प्रेमिका के बारे में कहते हैं कि 'वह मानता है कि नारी अपने जीवन में केवल एक ही पुरुष को प्रेम कर सकती है, एकही के चरणों में श्रध्दा अर्पित कर सकती है। यदि ऐसी नारी का विवाह उसके प्रेमी के स्थान पर किसी अन्य पुरुष के साथ किया जाता है तो यह उनके साथ घोर अन्याय है, और ऐसा विवाह व्यभिचार की श्रेणी में आ जाता है।' २

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ७५
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लि.,
संस्करण - १९४१

२ 'डॉ. बिंदू अग्रवाल' - 'हिंदी उपन्यासों में नारी-चित्रण' - पृ. ३२८
राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६८

'मृणाल' त्यागपत्र की नायिका है। प्रेमिका के रूप में सहपाठिनी शीला के भाई से प्रेम करती है। मृणाल को बचपन से ही माता-पिता का प्यार नहीं मिला। उसे भाभी के कठोर अनुशासन का बन्धन सहना पडता है। शीला के भाई की संगति का रस उसे इतना मधुर प्रतीत हुआ है कि उसे समूचा वातावरण प्रफुल्लित प्रतीत होता है। मृणाल शीला के भाई की प्रेमिका होने से, फिर प्रमोद को खींचना, उसके मुख को छाती के घोंसले में छिपा लेना इधर-उधर खींचातानी, प्रमोद के प्रति मानसिक विपर्यय नहीं, जैसा कि आचार्य वाजपेयी ने इंगित किया है। एकाध स्थान पर ऐसा भासित होता है कि प्रमोद के प्रति मृणाल के प्रेम में कुछ मानसिक विपर्यय भी है, पर वह हल्की छाया घरेलू व्यवहार की प्रतिक्रिया मात्र रहती है, उसमें किसी प्रकार की अनैतिक गहराई नहीं आती।[1]

बल्कि मन के भीतर उभरती यौन-भावना की सहज अभिव्यक्ति मात्र है। निश्चय ही प्रमोद पुरुष का प्रतिनिधित्व करता है, किंतु उसके प्रति किसी प्रकार के अनैतिक यौनकर्षण की कल्पना सम्भव प्रतीत नहीं होती। जो मृणाल पतिगृह त्यागकर किसी अन्य पुरुष से दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित कर बैठती है और विद्रोह के झोंके में स्पष्ट प्रलाप करती है, 'तन देने की जरूरत मैं समझा सकती हूँ। तन दे सकूँगी। शायद मृणाल के हृदय में अभी अभी प्रेम का अंकुर फूटा है। उसके मन में नयी नयी आशा-आकांक्षाएँ उमड़ रही हैं। वे किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहती। अपनी इस मानसिक दशा को वे इस प्रकार से व्यक्त कर रही हैं वह अनिवार्य हो। ... दान स्त्री का धर्म है।'[2]

मृणाल प्रेमिका होनेसे उसकी आशाएँ देख, चिड़िया कितना ऊँचा।

---

१ 'डॉ. मनमोहन सहगल' - 'उपन्यासकार जैनेंद्रकुमार : मूल्यांकन और मूल्यांकन' - पृ. १४४
प्रकाशक - साहित्य भारती, संस्करण-१९७६

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ५५
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२,
संस्करण - १९७९

उड़ जाती हैं। मैं चिड़िया होना चाहती हूँ ..... हाँ, चिड़ियाँ। उसके छोटे-छोटे पंख होते हैं। पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे उड़ जाती हैं। क्यों रे, कैसी मौज है।'[१]

मृणाल प्रेमिका है। वह परिस्थिती से बदल जाती है। पति से त्यागकर वह आयी है। और वह प्रेमिका के साथ एक प्यार टूटने पर दूसरा प्यार विवाह के बाद पति का प्यार निभाती है। पति ने घर से बाहर निकालने के बाद वह कोयलेवाले के साथ भाग जाने इसके पीछे कारण चाहे उद्दाम यौनोत्तेजना रहा हो, अथवा विकृत अहम्। उसकी व्यक्ति चेतना इतनी प्रखर है कि एक ओर जहाँ वह सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध शंखनाद करती है, तो दूसरी ओर कदाचित नारी सुलभ भावुकता के प्रवाह में भी बह जाया करती है। इन दोनों दिशाओं का संगम मन: तत्त्वगत है। प्रमोद के समझाने पर कि वह घर चले मृणाल कहती है 'तुम मुझा को नहीं जानते हो, मैं पति के घर को छोड़कर आ गई हूँ, पति है पर दूसरे पुरुष के आसरे पर रह रही हूँ। तुम न जानो, मैं यह जानती हूँ। तुम अपनी आँखे ढक लो, किंतु मुझसे अपना यह सारा पातक निगल जाने को नहीं कह सकते। (विद्रोह) फिर जिन को साथ लेकर पति को छोड़ आई हूँ, उनको मैं छोड़ दूँ। उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा ? (भावुकता) ..... पापिनी हो सकती हूँ पर उसके ऊपर क्या अकृतज्ञ भी बनूं।'[२]

मृणाल का चारित्र विकास असफल, प्रेयसीयत्व, सफल पत्नीत्व, असफल परकीयत्व में समाप्त होता है। आदिकाल से ही नर-नारी के सम्बन्धों में प्रेमतत्त्व को अनिवार्य माना गया है। विवाह की प्रथा प्रचलित होने के पूर्व पुरुष और नारी का मिलन उनके पारस्परिक प्रेमपर ही निर्भर था। बाद में समाज का नैतिक

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, संस्करण - १९७९ - पृ. १९

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ संस्करण - १९७९ - पृ. ९१

प्रगति के फलस्वरूप जब विवाह प्रथा का आरम्भ और विकास हुआ तब भी विवाह के लिए दोनों पक्षों में प्रेम के अस्तित्व को आवश्यक माना गया । वैदिक काल में प्रचलित "समन" आदि प्रथाओं से विदित होता है कि सभ्यता के जन्म-काल में युवक - युवतियों के स्वतंत्रतापूर्वक मिलने पर कोई प्रतिबन्ध न था । वे समान रूप से आमोद-प्रमोद और उत्सवों में भाग लेते थे और अपने मनोनुकूल जीवन-संगी का चुनाव करते थे । तत्पश्चात अपने अभिभावकों का अनुमति पाकर विवाह में बंधते थे ।

जैनेंद्रजी के "सुनीता" उपन्यास में "सुनीता" प्रेमिका का चरित्र [illegible] है । वह पत्नी और प्रेयसी दोनों ही है । दोनों स्थितियों में वह सफल नहीं है । न तो वह आदर्श पत्नी और प्रेमिका ही । उसके निवसना होकर हरिप्रसन्न के प्रति समर्पण का अस्वीकार उसके प्रेमसायत्व को असफल घोषित करता है ।

सत्या जो श्रीकांत की साली है। और सुनीता की बहन है पर हरिप्रसन्न की प्रेमिका और पत्नी बनाये के प्रयास में उसका चरित्र-विकास नहीं होता है । वह हरिप्रसन्न के पास ट्युशन के लिए भी आती है ।

सुनीता प्रेमिका है लेकिन वह पति के आज्ञा के कारण प्रेमिका बन गयी है । सुनीता पति परायणता के कारण ही हरिप्रसन्न के प्रति स्नेहशील है किंतु कर्तव्य के प्रति कुछ दिनों के लिए घर से बाहर जाने और उसे वहाँसे पत्र द्वारा हरिप्रसन्न को हर हालत में प्रसन्न रखने का निर्देश पाने पर वह भीषण अन्त: संघर्ष में उलझ जाती है परंतु उसका नैतिक बल बड़े आश्चर्य जनक ढंग से उसे सारी उलझन से बचा ले जाता है । हरिप्रसन्न को अवाक् रहस्यमयी दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए वह पूछती है --" तुम क्या चाहते हो हरिबाबू ? और यह उत्तर मिलने पर कि तुम को चाहता हूँ, सच्ची तुम को चाहता हूँ । वह हरिप्रसन्न के सम्मुख निरावरण हो जाती है, साड़ी उतार फेंकती है, शरीर से चिपटकर सटी हुई "बाड़ी" को फाड़ फेंकती है और कहती है" मैं तो तुम्हारे सामने हूँ । इन्कार कब करती हूँ ? लेकिन अपने को मारो मत, कर्म करो, मुझे चाहते हो तो ले लो ।

परंतु हरिप्रसन्न को उसे देखने तक का साहस नहीं होता, वह शान्त चुप बैठा रहता है।' १

प्रेमिका सुनीता में हमें नारी के व्यक्तित्व का ऐसा तेजोमय रूप मिलता है, जो तन से विवश होने पर तनिक डिगता नहीं, वरन् अपनी अलौकिक शक्ति से हरिप्रसन्न को वासना विमुख करने में सफल होता है।

' सुखदा ' उपन्यास का सुखदा पत्नीत्व और प्रयसीयत्व दोनों ही वर्गों की नारी है। पत्नीत्व धारणकर सुखदा अप्रभावित चरित्र और वासनावेग से परिचलित है। काम अभुक्ति का चरित्र सुखदा के पारिवारिक अभावों, अतृप्तियों आकांक्षाओं और लालसाओं में देखा जा सकता है। विवाहिता सुखदा का प्रयितम लाल के प्रति प्रेम उसके प्रेयसीयित्व को गौण बना देता है, क्योंकि लाल उसे छोड़कर चला जाता है। इस प्रकार प्रेमिका भी असफल है। दोनों स्थितियों में -- पत्नीत्व और प्रेयसीयत्व में असफल नायिका सुखदा की सफल कहानी इस कृति की उपलब्धि है।

प्रेमिका ' सुखदा ' अपने पति कान्त के सामने प्रियकर लाल की प्रशंसा भी करती है। प्रियकर लाल उसे बाहों में भरता, कंधों से थामता और अन्य आपत्ति जनक चेष्टाएँ करता है, किंतु किसी रहस्यमय मोह के कारण वह उसका विरोध नहीं कर पाता। परिणामत: पति दूर हटता गया और प्रियकर लाल निकट आ गया। पति के अधिकार से छूट भागने की लालसा उसमें उभरने लगी। इसलिए पहले से सुखदा ने विलास भवन में जाकर रहने की योजना की और बाद में वह प्रेमिका के रूपमें पति का घर छोड़कर माँ के यहाँ जा रही।

लाल का प्रवेश कुछ-कुछ ' सुनीता ' के हरिप्रसन्न सरीखा ही है। वहाँ

---

१ ' जैनेंद्रकुमार - ' सुनीता '- - पृ. २१९--२२०
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली -२
संस्करण - १९४०

सुनीता को अपने पति श्रीकान्त तथा यहाँ सुखदा को अपने पति कान्त से एक प्रकार का प्रोत्साहन ही मिलता है। जिससे दोनों नारियाँ क्रमश: हरिप्रसन्न और लाल की ओर खिंचती चली जा सके। अन्तर केवल इतना ही है कि सुनीता अन्त में संभल गई, सुखदा गड्ढे में जा गिरी, संभल नहीं सकी। यह बाहर 'देवर' बनकर भाभि के घर में प्रवेश करने और धीरे धीरे देवर - भाभि में प्रीति आकर्षण जैनेंद्र के अनेक उपन्यासों का समान सूत्र है। असे घर को तोड़ने एवं भाभी के रस-भोग का यह वृत्ति भी कभी अतीत में भाभिवाद के नाम से जानी गई थी।

'कल्याणी' उपन्यास में कल्याणी विवाह पूर्व प्रेयसी भी है, पर शिक्षण काल के प्रेयसीयत्व को महत्व नहीं देता और वर्तमान में डॉ.असरानी के पत्नीत्व को आदर्श रुप में जीने की आकांक्षी है। प्रेयसी होकर भी अप्रभावित चरित्र की सृष्टि है। विलायती में जाकर उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। वहाँ पर ही उसका एक युवक से परिचय होता है, जो प्रगाढ़ दशातक, पहुँचता है। इसी जाल में वह प्रेमिका के रुप में फस जाती है। कॉलेज की पढ़ाई और प्रेमिका की मन में सपने झूमने लगते हैं। इसी काल में वह प्रेमिका का वातावरण में उसका प्रकृत कवि हृदय कविताओं के माध्यम से व्यक्त होने लगता है। लेकिन आगे चलकर डॉ.असरानी ने भावी पत्नी के विषय में झूठें लांछनों का प्रचार किया, जिससे कि उसका कुलीन विवाह असंभव हो जाये। इसी लिए कॉलेज के युवक अपने प्रेमी से विवाह करने से इनकार करने के पीछे संभवत: कल्याणी की यह सद्भावना रही होगी कि आगे प्रेमिका रुप में बदनाम व्यक्तित्व के सम्पर्क से प्रेमी को क्यों सामाजिक दृष्टि से हीन बनाया जाये। इसी कारण 'दिया हुआ भी नहीं दिया जा सका और लेनेवाला अपना लेने का दावा भूल गया।'[१]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ.१२४

हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,

बम्बई-४,

संस्करण -- १९६२

इस प्रकार जैनेंद्रजी ने नारी के प्रेम हृदय को अपनी ही दृष्टि से देखा है। अब तक तो यही माना गया कि प्रेमिका अपने जीवन में केवल एकही पुरुष को प्रेम करती है यदि ऐसी नारी का विवाह किसी अन्य पुरुष से कर दिया जाय तो उसका प्रेम करने का अधिकार ही समाप्त हो जाता है। जैनेंद्रजी इस बात से सहमत नहीं है। उनका तो मत है कि 'मनुष्य के प्रगति के लिए पत्नी को नहीं वरन प्रेयसी को आवश्यक मानते हैं। मनुष्य में देवत्व होता है। पति नहीं प्रेयसी उसे जगाती है।' [१]

---

१ 'सावित्री पाठक' - 'जैनेंद्रकुमार के नारी पात्र' - मंगल प्रकाशन, जयपुर - पृ. ५०

माँ

नारी के नाना रूपों में सबसे अधिक महत्व और गौरवशाली रूप माता का है। वेदों में माता को पृथ्वी - स्वरूपा कहा गया है। पृथ्वी के समान ही वह संतान को धारण करती है, उसका लालन-पालन करती है और आजीवन धैर्य एवं सहिष्णुता के साथ संतान के सुख की कामना करती है। इसलिए माता के ऋण से उऋण होना असंभव माना गया है।

स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है। मातृत्व नारी-जीवन की चरम सफलता है। नारी जीवन की सफलता मातृत्व में ही चरितार्थ होती है। इस बात को उस समय के सभी मनीषि मानते थे। माँ को पृथ्वी समान और पिता से भी बड़ी माना है। माता के स्वभाव में एक ओर धैर्य, त्याग, ममता, स्नेह का परम उत्कर्ष देखते थे तो दूसरी ओर उसके पुत्रवती होने को भी अनिवार्य मानते थे। संतान को जन्म देना, उसका लालन पालन करना, अन्तिम क्षण तक उसकी रक्षा करना और आजीवन उसकी उन्नति में योग देना मातृत्व का ही आदर्श है, यही उसका शाश्वत रूप है।

जैनेंद्रकुमार के 'परख' उपन्यास में कट्टो बाल-विधवा है। वह अपनी वृध्द माता के साथ गाँव रहती है। कट्टो की माता वृध्द होने से दिन-रात कट्टो के बारेमें ही सोचती है, क्योंकि कट्टो तो युवा है, माता के मृत्यु के बाद उसका क्या होगा ? यही ख्याल माता को बार-बार सताता है। कट्टो की माता बार-बार कहती है "कट्टो अपनी ही चलती है। उसे मैंने बार-बार कह चुकी हूँ देख, ऐसे दु:ख देखेगी। दुनियासे नीचे होकर रहना अच्छा। मेरे पीछे तेरा कोई सहाई नहीं होगा। तब तू मेरी सीख याद करेगी। अब तो तेरी निभे चली जाती है। पर दुनिया में और माँ तेरे थोडे ही बैठी है।"[1]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख'- -पृ.५५

हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर - प्राइवेट लि.,

बम्बई -४, संस्करण - १९४१

कट्टो अपनी माता से कहती है, अम्मा तू ऐसा मत कह । मैं तेरे बाद बहुत थोड़ी जीऊँगी तेरे सामने तो मैं अपनी चला लू, फिर चलाने को कब मिलेगा । कट्टो अजीब लड़की वह फूट-फूट कर रोती है । उसे भी मालूम है कि माँ के सिवा इस दुनिया में मेरा कोई नहीं है । माता की अपनी एक लौती बेटी वह भी विधवा है उसके काम के बारे में माँ उसकी प्रशंसा करती है । वह सत्य से कहती है ` कट्टो मेरी बेटी ` मैं उसे दोष नहीं देती । अब दस दिन से तो मैंने काम छुआ नहीं वही सब करती थी । नेक आलस नहीं, नेक क्लेस नहीं । फिर ऊपर से मेरी टहल ये उसके काम के दिन हैं, बेटा ? .. और बच्ची इतनी पढ़ती है खेलती है और खाती है । पर इन बातों में क्या ? काम ऐसी मुस्तैदीसे करती है बेटा, कि मैं क्या कहूँ । किसी घरमें होती तो रानी ही होती । पर रोयेसे क्या ? जो लिखा था, सो हुआ । जो लिखा था, सो भुगता । बेटा मैं उसे बिलकुल दोष नहीं देती ।`[१]

आगे चलकर कट्टो की माता सत्य से कहती है कि `मैं मेरे पीछे उसकी खबरदारी रखियो । मैं भी तेरी माँ ही सरीखी हूँ । तू नहीं होता तो .... तो.... मैं .... उसे जहर ही देकर जाती । दुनिया ऐसी बुरी है बेटा, कि क्या कहा जाय । तेरे जैसे यहाँ बिरले होते हैं -- रतन होते हैं । ऊपर ही यह टिकी है, नहीं तो डूब जाती । तेरे में ही मुझे धीरज है ।`[२]

कट्टो की माँ ने सिर्फ अपनी बेटी के बारेमें सुख-दुःख सत्य को कहा ऐसी तो बात नहीं है । तो वह सत्य के बारेमें भी सत्य को पूछती है । सत्य से माँ ने कहा ` अरे सत्य, तेरा विवाह कब होगा ? सुनते हैं, लड़की खूब पढ़-लिख गई है । वह तो कह रहे हैं, पर तू ही मना कर रहा है । क्यों रे, यह क्यों ? `[३]

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख'- - पृ.५५-५६
हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा. लि.,बम्बई-४ -दिल्ली-६,
संस्करण - १९४१

२ 'जैनेंद्रकुमार'-'परख'- -- वही - - पृ.५६

३ 'जैनेंद्रकुमार'-'परख'- -- वही - - पृ.५६

कट्टो की माँ कट्टो पर बहुत प्यार करती है । अपने मरने के बाद उसका क्या होगा इसपर भी वह सोच-विचार करती है ।

जैनेंद्रजी के 'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल 'दो' बार माँ बन गयी है । लेकिन कठीन परिस्थिति के कारण विवाह होने के बाद जब गर्भावस्था में मृणाल एक बाद भाई के घर मिलने जाती है, परंतु भाई-भावज उसे पति चरणों में मृत्यु खोज का उपदेश करते है । इसलिए मृणाल विवश होकर वापस आती है और एक बच्ची की माँ बनती है, लेकिन कुछ दिनों में उचित पोषण के अभाव में बच्चा मर जाता है । मृणाल के पति का संदेह इस कारण वश बढ़ता चला जाता है और मृणाल का त्याग कर देता है । मृणाल कोयलेवाले के साथ दाम्पत्य स्थापित करती है । पुन: गर्भवती बनती है । मृणाल एक मिशनरी अस्पताल में पुन: एक बच्ची को जन्म देती है, और माता बनने का सुख उसे मिल जाता है । जो निरंतर भूख, गरीबी, अस्वास्थ्यप्रद वातावरण में केवल दस मास जीकर उस बच्ची की मृत्यु होती है । कोयलेवाले के पास रहकर बच्ची को केवल भूख, गरीबी के कारण उसका पालन नहीं हुआ । इसतरह मृणाल दो बार माता बनकर भी वह अपने बच्चे का पालन-पोषण करने असमर्थ हो गयी ।

जैनेंद्रजी के सुनीता उपन्यास में 'सुनीता' तो बड़ी है उसका विवाह हो चुका है, तो भी सुनीता के माता को उसका खयाल है, वह कुशल-मंगल है या नहीं यह अपनी बच्ची सत्या से पूछता है । क्योंकि श्रीकांत घर पर नहीं है यह सुनकर और भी वह घबरा जाती है और माता अपने सुनीता की रक्षा के लिए तत्पर दिखाई देती है । वह आखिर माँ है । माता अपने सभी बच्चे सुखी रहे यही चाहती है ।

सुखदा उपन्यास में सुखदा खुद माँ है । उनका लड़का विनोद सुखदा के माँ के पास रहता है । अब वह सात साल को हो गया है । उसे स्कूल भेजना चाहती है । घर का आर्थिक परिस्थिति बिकट होने के कारण कांत नैनीताल भेजने से राजी नहीं

हैं तो भी माता सुखदा अपने बेटे का हित चाहती हैं। एक ओर स्वामी (पत्नी) की बात न मानती हुई अपने आभूषण तक बेचकर विनोद को नैनीताल भेजने की हठ करती हैं, और मातृत्व हृदय में विवश होकर वह अपने पतिसे आज्ञा देते हैं, कि शाम को नैनीताल रवाना हो जा।

कल्याणी उपन्यास में खुद कल्याणी माँ बननेवाली हैं। डाक्टर असरानी के शादी के पूर्व की दो लडकियों का लालन-पालन भी वह करती हैं। जैसे यही कल्याणी के बच्चे हैं ऐसे ही पाठकों को उपन्यास पढ़ते वक्त ज्ञात होता हैं। सौतेले माँ होते हुए भी सौतेली माँ का रवैया उसमें दिखाई नही देता। कल्याणी अपनी बच्चों के साथ तरह तरह के खेल भी खेलती हैं।

मातृत्व का सही रूप कल्याणी के इस कथन में दिखायी दे रहा हैं। 'मेरे पेट का बच्चा क्या मेरी सब विडंबना झेल लेगा ? ..... बच्चा न होगा।'[१] बच्चे का होना भी तो कल्याणी के मातृत्व की सफलता हैं। अन्त में कल्याणी ने पुत्र को जन्म दिया और उसके कुछ देर बाद उसके हृदय की गति अचानक बंद हो गयी। कल्याणी में मातृत्व की गरिमा मौजूद हैं। परिस्थितिवश मुमूर्षु होने पर भी वह अपनी कोख के बच्चे के लिए चिन्तित हैं। बड़े बच्चे, जो कहीं निवासयुत विद्यालय में पढ़ते हैं, जिनमें प्राय: उसकी चिन्ता का कारण बन जाते हैं।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. १५०
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर - प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४,
संस्करण - १९६२

विधवा --

प्रेमचंद युग में विधवा समस्या जितनी महत्वपूर्ण बनकर सामने आई थी उतना प्रेमचन्दोत्तरकाल में नहीं । इस युग तक आते-आते उसका बहुत कुछ समाधान हो चुका था । यह बात सामाजिक मान्यता प्राप्त कर चुकी थी कि यदि विधवा चाहे तो उसके पुनर्विवाह में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये । विधवा को अनावश्यक निषेधों और प्रतिबन्धों में बांध कर उसके दुर्भाग्य को बरबस प्रलम्बित करने में कोई संगति नहीं है, यह बात अब स्वीकार कर ली गई थी, और नारी भी शिक्षा एवं जागृति के बल पर अपनी स्थिति को अपने हाथ में लेने योग्य होती जा रही थी । मृत पति के प्रति तर्कहीन निष्ठा के कारण अपने दीर्घ लौकिक जीवन को नष्ट करना सही नहीं है । यह उसकी समझ में आता जा रहा था ।

फलस्वरूप इस युग के उपन्यासों में ऐसी विधवा का चित्रण बहुत कम हुआ है जो निरीह भाव से परिवार और समाज का अत्याचार सहती हुई अपने जीवन को नष्ट कर देती है । नव शिक्षा और नव-जागरण के प्रभाव के कारण वह पुनर्विवाह करने को बुरा नहीं मानती ।

इस दुःख भरे जीवन में इन पीड़ित नारियों को जब किसी की सहानुभूति मिलती है तो स्वाभाविक रूप से इनका मन उधर ही झुक जाता है । विधवा नारी के मन में अपनी सामाजिक स्थिति के प्रति गहरा असंतोष समाया रहता है । उसके अवचेतन मन में इस स्थिति से मुक्ति पाने की लालसा भी होती है, परंतु उससे उबरने के लिए उसे सहारे की आवश्यकता है ।

हम देख सकते हैं कि इस युग के उपन्यासकार ने विधवा-विवाह का मुक्त कंठ से समर्थन किया है और उस पर आचरण करनेवाले पात्रों के साहस और त्याग की सराहना की है।

जैनेंद्रजी भी बाल-विधवा की आत्म-व्यथा को समझते थे। इस-लिए उन्होंने बड़े, स्वाभाविक ढंगसे 'परख' में बाल-विधवा कट्टो के मन की उथल-पुथल का चित्रण किया है और उसके माध्यम से विधवा - विवाह का समर्थन किया है। 'जब कट्टो पाँच वर्ष की थी तभी वह विधवा हो जाती है।'[1] बाल साथी सत्यधन के प्रति उसका प्रेम स्वाभाविक रूप से विकसित होता है और मन-ही-मन उसको अपना मन समर्पित कर देती है। ' एक बार कट्टो सत्यधन के चरणों को अश्रु-जल से सिंचित करती है।'[2] वह विधवा इस क्षण को अपना सौभाग्य समझती है।'

' कट्टो सौभाग्य के पहाड़ के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई। जिसके पासतक स्वप्न में भी पहुँचने की हिम्मत नहीं हुई थी, वही सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिरपर बरस पड़ा तो कट्टो विव्हल हुई और फिर बेसुध हो गई।'[3]

इसी उछाह की मनोदशा में वह अपने वैधव्य को भूलकर बाजार से सोहाग के अलंकार खरीद लाती है। ये चीजें खरीद कर - 'वह चौके में नहीं गई, अपने कमरे में आई। वहाँ तेल से चिकने हो रहे आले में अभी-अभी ताजी-ताजी बिसाती से खरीदी एक टिकुली की डिबिया, एक छोटा-सा दर्पण, एक राधा-किसन की तस्वीर, दोनों भौंहों के बीचोबीच, जरा ऊपर को, सींक से उस डिबिया में से,

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख' - - पृ.१३
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४
दरियागंज दिल्ली-६, संस्करण - १९४१

२ 'जैनेंद्रकुमार' - -- वही - - पृ.५१

३ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख' - - पृ.५१-५२
हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
बम्बई-४, दरियागंज, दिल्ली-६
संस्करण - १९४१

बड़ी नन्हीं-सी एक टिकुली लगा ली । देखती रहो - कैसे यह लाल-लाल बिन्दी काली पड़ती जा रही है ।'[१] इन पंक्तियों में लेखक ने अपनी कुशल लेखनी से विधवा के मन की ललक का कितना सजीव और मार्मिक चित्र उपस्थित किया है ।

कट्टो जानती है कि विधवा के लिए ये सोहाग की चीजें वर्जित हैं । इसलिए वह न तो किसी से इन चीजों को मँगाती है और न इस विषय में अपनी माँ से ही चर्चा करती है ।

यद्यपि सत्यधन माँ की प्रसन्नता के लिए और मर्यादा के विचार से कट्टो से विवाह नहीं करता, फिर भी यदि सत्यधन उसके सामने ऐसा प्रस्ताव रखता तो सम्भवत: `कट्टो को विवाह करने में आपत्ति न होती । किंतु सत्यधन के अतिरिक्त वह अन्य किसी व्यक्ति से विवाह नहीं करना चाहती । सत्यधन की इच्छा पूरी करने के लिए बिहारी के मन झुकाव समझकर वह बिहारी से केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध स्वीकार करती है ।

दोनों प्रतिज्ञा करते हैं `हम दोनों वैवाह्य - यज्ञ की प्रतिज्ञा में एक-दूसरे का हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं । हम एक होंगे - एक प्राण दो तन । कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा ।'[२]

विवाह की बात छिड़ते ही प्राचीन परिपाटी का सहारा ले लेती है `जीजी `कुछ नहीं । भला ब्याह कैसा ? जीजी, जानती नहीं तुम, मैं तो विधवा हूँ ।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' -'परख'- -पृ.६१
हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड,
अम्बई-४, दरियागंज, दिल्ली-६,
संस्करण - १९६१

२ 'जैनेंद्रकुमार' --'वही'-- -पृ.१०४

विधवाओं का भी ब्याह होता है ? छि: ।' [१]

इस तरह जैनेंद्रकुमार ने कथा-चक्र को अप्रत्याशित मोड देकर बड़ी कुशलता से काम लिया है । मूलत: आदर्शवादी होने के कारण वे एक ओर व्यावहारिक क्षेत्र में विधवा-विवाह को बचा जाते हैं, दूसरी ओर यह कहकर कि कट्टो को विधवा कहना 'विधवा' शब्द की विडम्बना है । विधवा हो भी तो भी क्या ? उसका अवश्य विवाह होगा ।' [२]

विधवा-विवाह को सहानुभूति भी दे देते हैं । उपन्यास के अंत में पाठक के मन पर यही प्रभाव पड़ता है कि वास्तव में कट्टो वैधव्य के कारण नहीं, सत्यधन के प्रति अपने प्रेम के कारण ही बिहारी से पुनर्विवाह नहीं करती ।

इस प्रकार इस युग तक आते-आते विधवा की समस्या का समाधान हो जाता है । फिर भी, उपन्यासकारों ने विधवा-विवाह का समर्थन करने पर भी विधवा-मन की दमित कामनाओं का उच्छृंखल अभिव्यक्ति को क्षमा नहीं किया है ।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'परख' - - पृ. ११८

हिंदी ग्रंथ - रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-४, दरियागंज, दिल्ली-६, संस्करण - १९६१

२ 'जैनेंद्रकुमार' - 'वही' - - पृ. ३३

माधवी

सुनीता उपन्यास में सुनीता की बहन माधवी विधवा है। माधवी पढ़ी-लिखी नहीं है। विधवा होनेसे कहीं बाहर जाती नहीं इसलिए उसकी छोटी बहन सत्या उसे बाहर निकालनेका प्रयास करती है। उसकी खिल्ली उड़ाती है, जो विधवा आभूषण पहने के लायक नहीं तो भी उसे जबरदस्तीसे आभूषण पहने के लिए कहती है। सत्या माधवी से कहती है ' जीजी चलोगी न ? ..... अर्ध्द विक्षिप्त उस माधवी की आँखों में इतने पर आँसू भर आये। ' सत्या मेरी बहन मुझे रहने दे तू जा घूम आ।' [1] विधवा का जीवन नैराश्य पूर्ण दिखाया दिया है।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पृ. १४९
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली २,
संस्करण १९८०

शिक्षित --

नारी-शिक्षा का काफी प्रचार हो जाने के फल-स्वरूप प्रेमचन्दोत्तर काल में नारी को शिक्षित करने की समस्या हिंदी उपन्यासकारों के सम्मुख न थी। इस युग में हिंदी उपन्यासों की लगभग सभी नारियाँ शिक्षित दिखाई देती हैं। शिक्षित नारी को जो सहानुभूति दी है वह उच्च शिक्षित नारी को नहीं। अधिकांशतः उच्च शिक्षित नारी का चित्रण पाश्चात्य रंग में रंगी नारी के रूप में किया गया है।

आज के समाज में नारी -- शिक्षा को प्रोत्साहन दो उद्देश्यों से मिलता है। (१) शिक्षित नारी को अच्छा, सुयोग्य घर और वर मिलने की अधिक संभावना रहती है। (२) वह अवसर पड़ने पर अपनी शिक्षा के सहारे स्वावलंबिनी भी बन सकती है। आज का पति अपनी पत्नी को सुशिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत देखना चाहता है।

विद्यार्थी-जीवन एक ऐसा समय होता है जब व्यक्ति समाज की विषमताओं और उसके संघर्षों से दूर अपने सपनों की दुनिया में खोया-सा रहता है। इस काल के चरित्र-चित्रण से व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति और उसके मनोविज्ञानपर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है।

जैनेंद्रजी के उपन्यास " परख " में की कट्टो जो बाल-विधवा है। कट्टो चार साल की थी तब उसका विवाह हुआ, और पाँचवे बरस में वह विधवा हो गयी। कट्टो पडोस का सत्यधन जो हर-साल कालिज की गर्मी की छुट्टियों में पढ़ाया करता था। वह कट्टो का मास्टर बन गया है। " कट्टो तन-मन से पढ़ रही है। पर मास्टर जी तन-मन से नहीं पढ़ा रहे हैं। वह जाने क्या देखते हैं और फिर क्या सोचते हैं।

' कट्टो अपनी सुलेख की कापी में बना-बनाकर लिखने में लगी थी कि उसका इंग्लिश रीडर उन्होंने उठाली । ' जो पाठ आज पढ़ना था उस सफेपर निगाह जमाते-जमाते लिखना शुरू कर दिया ।' अपने मास्टर साहिब का आदर करती हैं । कट्टो गाँव की बच्चियों को पढ़ाकर अपना समय व्यतीत करती है । गरिमा इस उपन्यास का दूसरा स्त्री पात्र के रूप में आयी है । गरिमा बी.ए. हो गयी हैं । पढ़ने में तेज हैं । बात करने में चतुर हैं ।

गरिमा का पति वकालत पास हो गया हैं । गरिमा की किताबे, गहने, सब चीजे कट्टो देखना चाहती हैं । उससे कुछ शिक्षा लेने की भी आशा रखती हैं ।

गरिमा का ब्याह हो गया है ' बड़े, घर की बेटी - ' खूब अँगरेजी - पढ़ी बहू गाँव आई हैं ।'

'त्यागपत्र' की मृणाल बचपन में कितनी नटखट, साहसी, चंचल और सरल प्रकृति की थी । मृणाल अपने स्कूल में की गई शरारत का वर्णन करती हुई प्रमोद से कहती हैं ' आज मास्टरजी को ऐसा छकाया, कि प्रमोद, तुझे क्या बताऊँ..... और प्रमोद वह हैं नहीं गणित के मास्टर । शीला ने उनकी कुर्सी की गद्दी में पिन चुभोकर रख दी, शीला बड़ी नटखट हैं । .... मास्टर ने बेंत फटकार कर कहा मैं तुम्हें एक - एक को पीटूँगा । सचमुच उनको गुस्सा बहुत था । उनका गुस्सा देखकर सब लड़कियाँ एक-दूसरे की तरफ देखने लगी । यह मुझ को बुरा लगा । मैं ने खड़े होकर कहा ' यह मेरा कसूर हैं, मास्टर जी ।' मास्टर जी पहले तो मुझको

देखते रहे । फिर कहा - यहाँ आओ ।` मैं चली गई । कहा` हाथ फैलाओ । ` मैंने हाथ फैला दिया । उस फैली हथेलीपर उन्होंने तीन-चार बेंत मारे । मैंने समझा था और मारेंगे । पर जब बेंत उन्होंने अपने हाथ से अलग कर दिया तो मैंने भी अपना हाथ खींच लिया । सच कहूँ प्रमोद मुझे कुछ भी चोट नहीं लगी । मैं उनकी उस आँख की तरफ देख रही थी ... फिर मास्टरजी ने चिल्लाकर कहा ` अब तो नहीं करेगी ? मैं चुप चाप खड़ी रही और सोचती रही कि एक बार तो मैं भी सचमुच का कसूर करके देखूँगी ।`[१]

जैनेंद्रजी के सुनीता उपन्यास में सुनीता` उच्च शिक्षिता हैं । वह तनिक भी इस तरह नहीं रहती कि लोग न समझे वह उच्च शिक्षिता नहीं हैं । कुछ दिनों से नौकर हटाकर घर का काम-धन्धा करना शुरू कर दिया हैं । हारमोनियम और वायलिन पर धूल चढ़ने देती हैं, और पुस्तकों को भी अलमारियों मे चुप लेटे रहने देती हैं ।

सुखदा उपन्यास में सुखदा तो घर से बाहर जाकर किसी सभा की अध्यक्षा बनना अथवा मुख्य अतिथि रूप में भाषण झाड़ना उसे प्रिय लगता हैं । इससे स्पष्ट होता हैं कि सुखदा पढ़ी-लिखी होगी । अपने बच्चे को स्कूल को नैनिताल भेजना, विवाह पूर्व अवस्था में पति के बारेमें कि गयी आंकाक्षा जो शायद विलायत जाने को उद्युत हो उसके पास मोटर होना तो अनिवार्य हैं । इससे स्पष्ट होता हैं कि वह पढ़ी लिखी होगी । शिक्षित होगी ।

'कल्याणी' उपन्यास की 'कल्याणी' विलायत से डाक्टरी पास उच्च

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'त्यागपत्र' - - पृ. ३
पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली-२
संस्करण - १९७९

शिक्षिता एवं कुशल लेडी डाक्टर हैं । वह अपना स्वतंत्र दवाखाना खोल कर डॉक्टरी का व्यवसाय करने लगती हैं । वह अपनी पति से कहती हैं " मैं डाक्टर नहीं बनना चाहती । पर अगर तुमको डाक्टरी की आमदनी भी चाहिए, उसके बिना अगर नहीं चलता हो, तो पतिव्रत की माँग उतनी कसी नहीं रखी जा सकेगी, थोडा उसे उदार करना होगा । " .... अच्छी बात है, मैं डॉक्टरनी बनती हूँ । लेकिन तब समझ लीजिए कि मैं हर किसी से मिलूँगी । अच्छे से तो, बुरे से तो । तब आप मुझ पर भरोसा न भी रखें तो भी मुझे रोका नहीं जा सकेगा । और तब वह दवाखाना मेरा होगा । हिसाब-किताब मेरे हाथों में रहेगा । "[१]

कल्याणी अंग्रेजी और अंग्रेजित के प्रति उनकी कटु-तीक्ष्ण भावना थी । वह बोलने के अतिरिक्त अंग्रेजी बहुत अच्छी लिखती भी थी और विलायती रीति-नीति के निर्वाह को ऊपरसे तनिक छोडती नहीं मालूम होती थी उन्हें विलायती संस्कृति का बिल्कुल भरोसा नहीं था । वह अच्छी हिंदी की कवियत्री भी हैं । मिसेज असरानी स्वतंत्र उन्नत विचारों की महिला हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनेंद्रजी के उपन्यासों के अधिकांश नारी पात्र शिक्षित और समझदार दिखाई देते हैं । शिक्षा से मेरा मतलब केवल डिग्री से नहीं है । जैनेंद्रजी के नारी पात्र चाहे विश्वविद्यालय से मिलनेवाली डिग्रियों से वंचित हो परंतु नारी पात्रों में शिक्षा की सही तस्वीर देखने को मिलती है ।

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'कल्याणी' - - पृ. ३९
प्रकाशक - हिंदी ग्रंथ रत्नाकर प्रा. लि. बंबई-४,
संस्करण - १९६२

बहन --

एक ही माँ की सन्तान होने के कारण बहनों को बचपन से ही समान वातावरण और समान संरक्षण मिलता है । इसीलिए एक ओर उसके मन में सहज स्नेह का भाव रहता है, तो दूसरी ओर बराबरी की और कभी-कभी प्रतिद्वन्द्विता की भावना भी ।

'सुनीता' में सुनीता की छोटी बहन सत्या का बड़ा ही अनुगत और निश्छल रूप मिलता है । जिस प्रकार सुनीता सत्या की पढ़ाई लिखाई और विवाह आदि का चिन्ता करती है उसी प्रकार सत्या भी अपनी बड़ी बहन की हित-कामना करती रहती है । जिस रात सुनीता हरिप्रसन्न के साथ आतंकवादी दल में जाती है, उसी रात उसके पति श्रीकांत लौट आते हैं । सुनीता ने सत्या को बता रखा है कि उसके हरिप्रसन्न के साथ जाने की बात किसी पर प्रकट न हो । इस लिए सत्या जीजी जी को देखते ही बातों में लगा लेती है और अपनी सारी योग्यता और कौशल का प्रयोग कर श्रीकांत को अपने घर जाने से रोकती है । यद्यपि उसका ऐसा प्रगल्भ व्यवहार श्रीकांत को भी अप्रत्याशित लगता है । फिर भी उससे सत्या की बड़ी बहन के प्रति अनुराग प्रमाणित होता है ।

सत्या के अतिरिक्त सुनीता की एक और बड़ी बहन है माधवी । माधवी को भला कभी सत्या किसी बात के लिए पूछती है ? माधवी पढ़ी नहीं है, विधवा है, निपुत्रा है, विक्षिप्त-सी है । सो अंग्रेजी के अखबार-किताब पढ़नेवाली यह सत्या जो माधवी के सदा ठट्ठक के ठट्ठक आभूषण पहने रहने पर उसकी खिल्ली ही उड़ाती रही है । वही सत्या इस माधवी से कह रही है -- 'जीजी, चलोगी न ? ... अर्द्ध विक्षिप्त उस माधवी की आँखों में इतने पर ही आँसू भर आये ।

सत्या उसकी बेटी तो नहीं है, बहन ही है, पर उसके भी बेटी होती तो क्या वह भी ऐसे ही न बोलती ? अर्ध-पागली माधवी का मन उसी अनहोनी संभावना को खींच लाया है । माधवा बोली ' सत्या मेरा बहन, मुझे रहने दे, तू जा घूम आ । '[१]

यद्यपि सम्मिलित परिवार के विघटन और पृथक परिवार की प्रतिष्ठा के साथ समाज में पति-पत्नी के संबंध ही सर्वोपरि हो चुके हैं और विवाहोपरान्त नारी का प्रमुख क्षेत्र अपना पतिगृह ही है, फिर भी छोटी बहन के प्रति उसका स्नेह भाव कम नहीं हुआ है । आधुनिक जीवन प्रणाली में उसका स्थान अब महत्वपूर्ण नहीं रहा है, और विशिष्ट परिस्थितियों में ही वह तीव्रता से प्रकाश पाता है ।

' त्यागपत्र ' उपन्यास में भी बहन का संदर्भ मिलता है । लेकिन वह नाता भाई-बहन का दिखाई देता है । परिवार में बहन-बहन के स्नेह से भी अधिक गहरा स्नेह बहन और भाई में पाया जाता है । मध्ययुग के जीवन में नारी की स्थिति जब पूर्ण आश्रिता की-सी हो गई थी, तब भाई को वह अपना संरक्षक भी मानने लगी थी । रक्षा-बंधन का त्यौहार आज भी इस बात का साक्षी है ।

' त्यागपत्र ' की मृणाल भाई के आश्रय पोषित है । मृणाल चंचल बालिका है । स्कूली जीवन में सहपाठीनी शीला के भाई के साथ प्यार होता है । इसका पत्ता भाई को लगता है । भावज-भाई की असहिष्णुता इस सीमातक बढ़ जाता है कि एक दिन वह बेंत से मृणाल की निर्मम पिटाई करते हैं । तभी भाई-अपनी बहन का विवाह एक प्रौढ़ आदमी से विवाह कर देते हैं । एक दुहाजू प्रौढ़ के साथ कोमल कलिका का गठबंधन करके घर से विदा कर देते हैं ।

---

१ 'जैनेंद्रकुमार' - 'सुनीता' - पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली-२ संस्करण - १९६० - पृ. १९९

एक दिन मृणाल ससुराल से गर्भावस्था में भाई के घर मिलने आती है। वह लाखों संकेतों में बेजबान बछिया की तरह भाई-भावज के पास अपना दर्द बाँट देती है। लेकिन भाई यह सुनकर उसे समाज की रूढ़ियों में बंधे दिखाई देते हैं, और उसे भाई कहता है मृणाल पति-चरणों में ही मृत्यु की खोज का उपदेश देकर पुन: ससुराल भेज देते हैं। यहाँ पर ऐसे भाई को दिखाया है जो समाज के भय से अपनी बहन को फिरसे नरक की यातना भोगने के लिए वापिस भेज देता है। आज भी समाज में इस प्रकार की घटनाएँ रोजाना हमें देखने सुनने को मिलती रहती हैं। जैनेंद्रजी के उपन्यासों में जहाँ तक विभिन्न नारी संबंधों का सवाल है उनमें से पत्नी और प्रेयसी पर ही अधिक लिखा है। अन्य संबंध आते तो हैं परंतु बहुत कम मात्रा में।

..